एलिफैण्टा

हरिनन्दन ठाकुर

5715

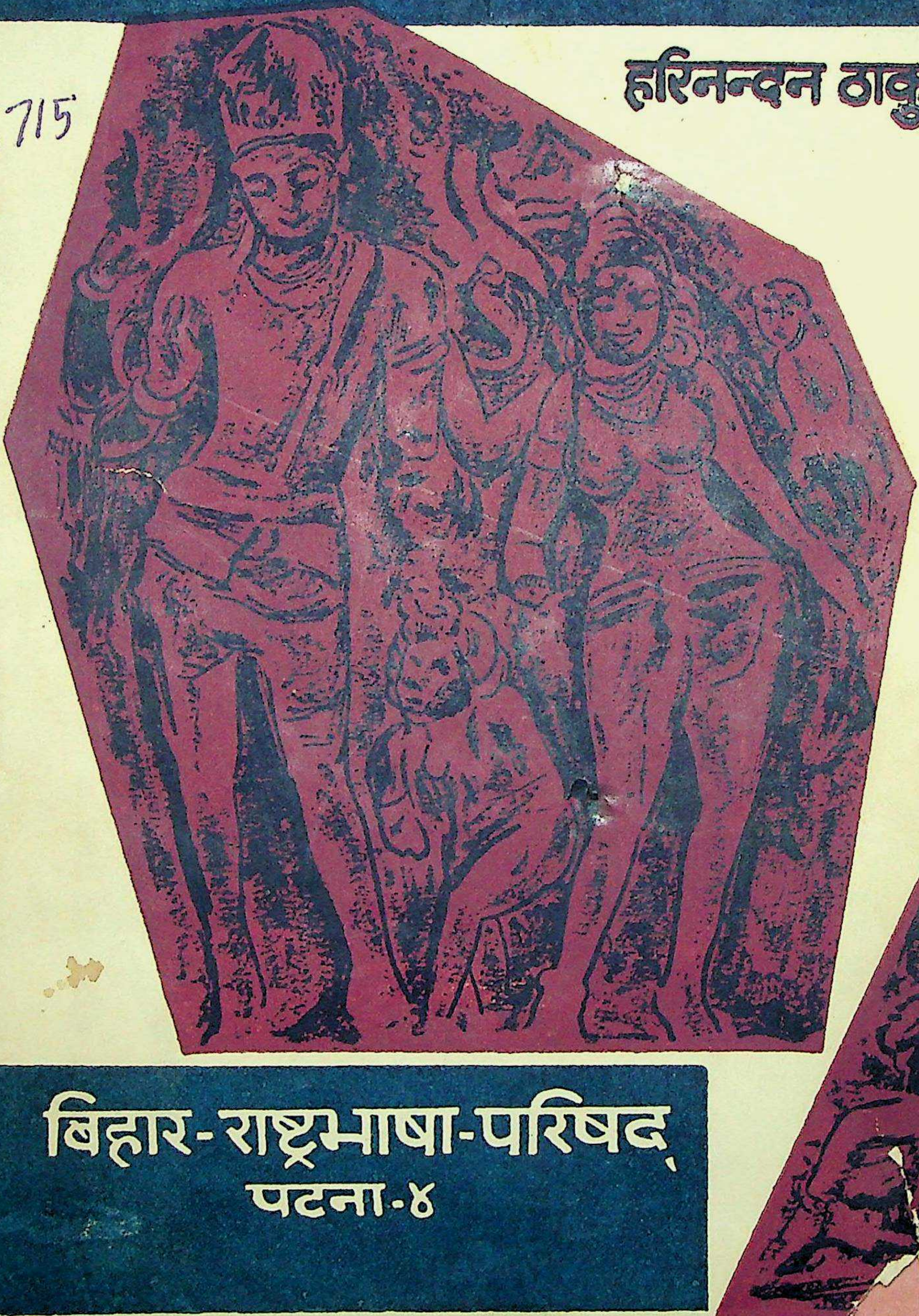

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्,
पटना-४

इंडियन बुक डिपो
[illegible] भवन,
सामने अमीनाबाद पोस्ट आफिस,
बी० एन० वर्मा रोड,
लखनऊ

एलिफैण्टा

लेखक

श्रीहरिनन्दन ठाकुर, आई० ए० एस०

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना-४

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना-८००००४

© बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

प्रथम संस्करण
विक्रमाब्द २०३८ ; शकाब्द १९०३ ;
ख्रीष्टाब्द १९८१

मूल्य : २१ रु० ५० पैसे

राजकीय संग्रहालय
क्रमसंख्या 5715
प्राप्ति तिथि
विभाग
श्रेणी
STATE ... LUCKNOW

मुद्रक :
सुनील प्रिन्टिंग प्रेस,
पटना-८००००४

वक्तव्य

एक ओर जहाँ हमें इस पुस्तक के प्रकाशन पर हर्ष हो रहा है, वहाँ ही अतिशय दुःख भी हो रहा है कि इसके विद्वान् लेखक श्रीहरिनन्दन ठाकुर (भा० प्र० से०) इस प्रकाशन से हर्षित होने और इसकी भूमिका स्वयं लिखने के लिए इहलोक में नहीं रहे। उनके देहावसान से जहाँ हिन्दी की अपूरणीय क्षति हुई, वहाँ यह पुस्तक भी उनकी लेखनी से लिखित भूमिका से वंचित रह गई। हम उन्हें सादर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उनकी दिवंगत आत्मा की चिरशान्ति एवं सद्गति के लिए परमप्रभु से प्रार्थना करते हैं। अस्तु।

'एलिफैण्टा' भारत का एक छोटा-सा द्वीप है, जो बम्बई बन्दरगाह से ६ मील पूर्व में अवस्थित है। इसकी परिधि ५ मील है और इसकी प्रसिद्धि लावा-चट्टान में काटे गये गुफा-मन्दिर के कारण है। यहाँ इमारती पत्थर की कटाई की कई खदानें हैं। इसकी चोटियों की ऊँचाई ५६८ फुट तक है।

विद्वान् लेखक की 'नेपाल देश और संस्कृति' नामक एक पुस्तक परिषद् द्वारा प्रकाशित हो चुकी है, जो पर्याप्त रूप से लोकप्रिय एवं उपयोगी मानी गई है। उनकी यह दूसरी पुस्तक भी केवल भ्रमण-वृत्तान्त नहीं है, बल्कि है सांस्कृतिक भी। केवल भ्रमणार्थियों अथवा पर्यटकों के लिए ही नहीं, बल्कि भक्तों के लिए, और विशेषतः शैव भक्तों के लिए, भी यह पुस्तक अत्यन्त ही उपयोगी है। एलिफैण्टा पहुँचने पर जहाँ पर्यटकों को कलापूर्ण मूर्त्तियों के दर्शन होंगे, वहाँ प्रचुर स्वास्थ्य-लाभ भी होगा; क्योंकि वह बम्बई महा-नगर के निवासियों द्वारा सौन्दर्य-स्थल के साथ-साथ श्वास-केन्द्र और स्वास्थ्य-केन्द्र भी माना जाता है।

गुफा-मन्दिर तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं। प्रधान गुफा की देहली ६० फुट चौड़ी और १८ फुट ऊँची है। छत चट्टान काटकर बनाये गये स्तम्भों पर टिकी है। स्तम्भों पर देवी-देवताओं की विशालकाय मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं। प्रधान मन्दिर में भव्य त्रिमूर्त्ति विराजित है। मूर्त्तियों के मस्तक ४-५ फुट लम्बे और बड़े ही कलात्मक ढंग से निर्मित हैं। चूड़ा का शृङ्गार विचित्र ही है। एक मूर्त्ति के हाथ में नाग, मस्तक पर एक मानव-खोपड़ी और एक शिशु हैं। इस त्रिमूर्त्ति के पास ही अर्द्धनारीश्वर की १६ फुट ऊँची मूर्त्ति है। दाईं ओर कमलासीन चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्त्ति है और बाईं ओर विष्णु भगवान् हैं। दूसरी ओर भी एक गुहागृह है, जिसमें शंकर-पार्वती की कई मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं। सबसे विशाल और लोमहर्षक अष्टभुज शंकर की ताण्डव-नृत्यरत मूर्त्ति है।

यद्यपि १६वीं सदी में पुर्त्तगालियों के नृशंस आचरण से इस गुफा की मूर्त्तियाँ अनेकतः टूट गई हैं, फिर भी जो बच रही हैं, उनसे मध्य-पूर्वकाल की मूर्त्तन-कला के गौरव का पर्याप्त परिचय मिलता है। प्रायः ९० फुट एक दिशा में कटी इस सागरवर्त्ती गुफा की छह-छह स्तम्भोंवाली छह कतारें मानों उसकी छत सिर से ऊपर उठाये हुए हैं। वैसे

तो शिव-परिवार की अनेक मूर्त्तियाँ वहाँ दर्शनीय हैं; पर ईसवी सन् की लगभग आठवीं सदी में उत्कीर्ण शिव की सर्वतोभद्रिका त्रिमूर्त्ति अपने प्रकार की मूर्त्तियों में बल और रूप में असाधारण है। भारी, गम्भीर, चिन्तनशील मस्तक, बोझिल पलकोंवाले नेत्रों से जैसे नीचे देख रहा है। होंठ गुप्तोत्तरकालीन सौन्दर्य में भरे-भरे काटे गये हैं। इस त्रिमूर्त्ति को अक्सर गलती से ब्रह्मा, विष्णु और शिव का माना गया है, पर वस्तुतः है यह मात्र शिव-परिवार की। एक ओर अघोरभैरव संसार के संहारकर्त्ता के रूप में प्रस्तुत हैं, तो दूसरी ओर पार्वती का आकर्षक तरुण मस्तक है, और दोनों के बीच दोनों के सन्तुलन से मण्डित कल्याणकारी शंकर हैं। यह त्रिमूर्त्ति भारत के सभी कालों की भव्य मूर्त्तियों में अपना स्थान रखती है।

अपने वक्तव्य का समापन करते हुए हम खेद व्यक्त करते हैं कि इस पुस्तक के प्रकाशन में अप्रत्याशित विलम्ब हुआ। एतदर्थ हम कृपालु पाठकों से क्षमाप्रार्थी हैं।

हमारा अनुरोध है कि अन्य पर्यटकगण भी उत्तमोत्तम भ्रमण-ग्रन्थों से हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि करने का कष्ट करें।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
श्रावण-शुक्ला सप्तमी, २०३८ वि०,
७ अगस्त, १९८१ ई०

रामदयाल पाण्डेय
उपाध्यक्ष-सह-निदेशक

एलिफैण्टा

विषयानुक्रम

			पृष्ठ-संख्या
भौगोलिक और ऐतिहासिक परिचय	...	...	१
लयण-सम्बन्धी अनुश्रुतियाँ और इतिहास	...	...	६
लयण और उनका वास्तु-विन्यास	...	...	१०
पूर्वी खण्ड	...	...	१६
पश्चिमी खण्ड	...	...	१८
अन्य लयण	...	...	१९
अन्धकरिपु-मूर्त्ति	...	...	२७
कल्याणसुन्दर	...	...	३४
गंगावतरण	...	...	४३
त्रिमूर्त्ति	...	...	४९
अर्द्धनारीश्वर शिव	...	...	५३
कैलासोत्तोलन	...	...	५९
योगेश्वर शिव	...	...	६२
शब्दानुक्रमणिका	...	...	६९

चित्र-सूची

फलक-संख्या १ : एलिफैण्टा द्वीप की पहाड़ी

,, २ : एलिफैण्टा द्वीप की पहाड़ियाँ : दूसरा दृश्य

,, ३ : एलिफैण्टा द्वीप की पश्चिमी पहाड़ी, जिसमें मुख्य लयण है।

,, ४ : एलिफैण्टा के मुख्य मन्दिर का स्केच-प्लान

,, ,, : एलिफैण्टा द्वीप पर पहुँचे मोटर-लांच

,, ५ : जेट्टी से लयण की ओर

,, ६ : पहाड़ी पर पहुँचने की सीढ़ी

,, ७ : पश्चिमी पहाड़ी से समुद्र का दृश्य

,, ८ : पश्चिमी पहाड़ी से बम्बई और निकटवर्त्ती पहाड़ियाँ

,, ९ : प्रथम लयण-प्रवेश-द्वार

,, १० : त्रिमूर्त्ति की बाईं ओर की मूर्त्तियाँ

,, ,, : प्रथम लवण—मुख्य मण्डप

,, ११ : प्रथम लयण : मण्डप—पूर्वी अंश

,, १२ : मुख्य मण्डप का पश्चिमी भाग

,, १३ : मण्डप के सम्मुख गर्भगृह—पूर्वी द्वार

,, ,, : मण्डप के सम्मुख गर्भगृह (पूर्वी द्वार) में प्रतिष्ठित शिवलिंग की एक झाँकी

,, १४ : गर्भगृह—उत्तरी द्वार

,, १५ : गर्भगृह—पश्चिमी द्वार

,, १७ : बरसाती के पूर्वी पटल का दायाँ भाग

,, ,, : योगेश्वर लकुलीश

,, १८ : नृत्यरत नटराज के दक्षिणांग की एक झाँकी

,, ,, : बरसाती के पश्चिमी पटल का बायाँ भाग

,, ,, : लयण की एक मूर्त्ति

,, १९ : नटराज की एक मुद्रा

,, ,, : बरसाती का पश्चिमी पटल : नृत्यरत नटराज के सम्मुख की एक झाँकी

,, २० : रावण-दर्प-दलन-मूर्त्ति

,, २१ : रावण द्वारा कैलासोत्तोलन का एक दृश्य : मण्डप की उत्तरी दीवार के पूर्वी पटल का मुख्य अंश

फलक-संख्या २२ : लयण की एक झाँकी

,, ,, : मण्डप की उत्तरी दीवार का पश्चिमी पटल : अन्धक-रिपु : लेखक, उनके साथ कनिष्ठ पुत्र अमरकान्त और श्रीनर्मदेश्वर सिन्हा

,, २३ : मण्डप की दक्षिणी दीवार के पूर्वी सिरे पर मानिनी पार्वती की मूर्त्ति

,, ,, : अन्धकासुर-वध

,, २४ : मण्डप की दक्षिणी दीवार के पूर्वी पटल में मूर्त्तित मानिनी पार्वती

,, २५ : शिव-पार्वती-विवाह की कल्याणसुन्दर मूर्त्ति (मण्डप की दक्षिणी दीवार का पश्चिमी पटल)

,, २६ : त्रिमूर्त्ति (अन्तराल के पीछे मध्य में)

,, २७ : त्रिमूर्त्ति के वाम भाग का मूर्त्तन

,, २७-२८ : बरसाती का पूर्वी पटल

,, २८ : अर्द्धनारीश्वर शिव

,, २९ : त्रिमूर्त्ति के दक्षिण-भाग का मूर्त्तन

,, ३० : गंगाधर शिव

,, ३१ : प्रथम लयण के पूर्वी खण्ड के शिव-मन्दिर का प्रवेश

,, ३२ : पूर्वी खण्ड के शिव-मन्दिर का पूर्वी खण्ड

,, ,, ,, ,, का शेषांश : गुफा के भीतरी बरामदे का एक दृश्य—दाईं ओर कुब्जक-सहित मूर्त्ति

,, ३३ : प्रथम लयण के पूर्वी खण्ड में लेखक, उनके कनिष्ठ पुत्र अमरकान्त और श्रीनर्मदेश्वर सिन्हा

,, ,, : गर्भगृह के भीतर ९ फुट ५ इंच के वर्गाकार चबूतरे पर प्रतिष्ठित २ फुट ५ इंच के व्यासवाले शिवलिंग के साथ लेखक और उनकी टोली के के सदस्य

,, ३४ : पूर्वी खण्ड के शिव-मन्दिर का पश्चिमी द्वारपाल

,, ,, : पूर्वी खण्ड के शिव-मन्दिर का पश्चिमी द्वारपाल

,, ३५ : प्रथम लयण का पश्चिमी खण्ड—आँगन, कुण्ड और शिव-मन्दिर

,, ३६ : मुख्य मण्डप का पश्चिमी भाग और पश्चिमी खण्ड का शिव-मन्दिर

,, ३७ : पश्चिमी खण्ड के शिव-मन्दिर में प्रतिष्ठित शिवलिंग की एक झाँकी

भौगोलिक और ऐतिहासिक परिचय

एलिफैण्टा अरब-सागर में स्थित एक छोटे-से द्वीप का नाम है, जो बम्बई-स्थित अपोलो बन्दर (गेटवे ऑफ इण्डिया) से सात मील उत्तर-पूर्व १८°५८' उत्तर और ७२°५८.५' पूर्व स्थित है। इस द्वीप की परिधि मात्र साढ़े चार मील है और ज्वार-भाटे के अनुसार इसका क्षेत्रफल ४ और ६ मील के बीच घटता-बढ़ता रहता है। द्वीप पर दो छोटी पहाड़ियों का एक समूह है, जिसके बीच पतली-सी घाटी है (फलक १,२,३)। यह पर्वत-शृंखला पश्चिम की ओर से धीरे-धीरे ऊपर को उठती है और टेढ़ी-मेढ़ी आकृति धारण करते हुए घाटी को पारकर पूर्व छोर पर पहुँचकर ५६८ फुट ऊँची हो जाती है। यह पहाड़ी आम, इमली, करण्ड आदि वृक्षों से आच्छादित है और जहाँ-तहाँ ताड़ के वृक्ष भी दिखाई पड़ते हैं। समुद्र-तटवर्त्ती भूमि में मैनख्रोव की झाड़ियों का बाहुल्य है और पहाड़ी कोर पर नारियल के वृक्षों की पाँत जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ती है। इस द्वीप पर बहुत थोड़े-से लोग रहते हैं; जो धान की खेती करते, बकरी और मुर्गी पालते और बम्बई के बाजार में अपनी चीजें बेचकर जीवन-यापन करते हैं।

इस द्वीप का एलिफैण्टा नाम पुर्त्तगालियों का दिया हुआ है। वे लोग जब इस द्वीप पर आये तब वे उस जगह उतरे, जिसे लोग राजघाट या राजपुरी के नाम से पुकारते हैं। इसके निकट उन्हें हाथी की एक भीमकाय प्रतिमा देखने को मिली। यह प्रतिमा तेरह फुट २ इंच लम्बी और ७ फुट ४ इंच ऊँची थी। सन् १८१४ ई० में इस प्रतिमा का कण्ठ से आगे का भाग टूटकर गिर पड़ा और कुछ दिनों बाद उसका शेष भाग भी टूट-फूट गया। कुछ दिनों तक तो उसके अवशेष यों ही पड़े रहे। सन् १८६४ ई० में प्रतिमा के टूटे खण्ड बम्बई लाये गये और विक्टोरिया-गार्डेन में, जो अब जीजाबाई-उद्यान के नाम से पुकारा जाता है, जोड़कर खड़ा किया गया। वहाँ वह अब भी देखा जा सकता है (फलक ४)।

स्थानीय लोग इस द्वीप को घारापुरी के नाम से जानते और पुकारते हैं। कुछ लोग इस नाम की व्युत्पत्ति शैव-मन्दिरों के शूद्र-पुजारी घारी (गुरव) से मानते हैं, कुछ उसका सम्बन्ध प्राकृत शब्द 'घार' (प्राकार) से जोड़ते हैं। कुछ लोग उसके मूल में 'घृ' धातु देखते हैं, जिसका अर्थ होता है—छिड़कना, अभिषेक करना। व्याकरण के 'घृ क्षरणे' के आधार पर 'घृ' धातु में अप् प्रत्यय लगाने से 'घर' शब्द बनता है। 'घर' में स्वार्थिक 'अण्' लगाने से 'घार' और उसका स्त्रीलिंग 'घारा' होगा। इस प्रकार घारा अभिषेक-स्थान का बोधक

होगा और घारापुरी का तात्पर्य राज्याभिषेकवाली नगरी होगा। पर वास्तविकता क्या है, कहना सहज नहीं।

सन् १५७९ ई० में इस द्वीप पर जे० एच० वान लिन्सचौटेन नामक एक यूरोपीय आया था, उसने अपनी यात्रा-पुस्तक 'डिस्कोर्स आफ वायजेज' में इस द्वीप का उल्लेख पोरी (Pory) (पुरी) नाम से किया है। इससे अनुमान होता है कि लोग इसे सोलहवीं शती में 'पुरी' नाम से पुकारते थे। पुरातात्त्विक सफाई के समय वहाँ के मुख्य लयण-स्थित कुण्ड के भीतर, जिसका परिचय आगे के परिच्छेद में दिया गया है, मिट्टी में दबा एक ताम्र-घट प्राप्त हुआ था। इस घट के कण्ठ पर निम्नलिखित अभिलेख नागराक्षरों में अंकित था :

ओं, संवत् ११४३ संवत्सरे चैत्र सुद १४ श्रीपुरी विनयेत्र श्रीजोगेश्वरी देव्याः ताम्र पल १६४ लोहीकृत्तः। (संवत् ११४३, क्षय संवत्सर की चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को जोगेश्वरी देवी के श्रीपुरी विनय में (यह) १६४ पल ताम्र से बना)।

यह पात्र जल-कुण्ड में मिला, इससे यह सहज अनुमान किया जा सकता है कि वह जल निकालते समय कुण्ड में गिर गया होगा। किन्तु, वह पात्र इस स्थान से सम्बन्धित था अथवा कहीं बाहर से लाया गया था, यह कह सकना कठिन है। अभिलेख में जोगेश्वरी देवी का उल्लेख, बम्बई के पश्चिमी रेलवे के बिजली-गाड़ीवाले अन्धेरी से अगले स्टेशन के निकट स्थित जोगेश्वरी नामक लयण का स्मरण कराता है। इस प्रकार यह धारणा होती है कि जोगेश्वरी तथा यह द्वीप दोनों ही श्रीपुरी नामक क्षेत्र के अंग रहे होंगे। सम्भव है, यह श्रीपुरी ही पीछे मात्र पुरी कही जाती हो और वह एलिफैण्टा का ही प्राचीन नाम हो। अपने उत्कर्ष-काल में यह श्रीपुरी अर्थात् 'सम्पदाओं की पुरी' कहलाती रही हो। अजब नहीं, इसी का अपभ्रंश घारापुरी हो।

घारापुरी (एलिफैण्टा) का प्राचीन नाम श्रीपुरी था, यह मान लेने पर हमारा ध्यान चालुक्य-नरेश पुलकेशिन् (द्वितीय) के आयहोले अभिलेख की ओर जाता है, जो शक-संवत् ५५६ (६३४-३५ ई०) में टंकित किया गया था। इस अभिलेख में कहा गया है [1] :

अपर-जलधेर्लक्ष्मीं यस्मिन्पुरीम्पुरभित्प्रभेमदगजघटाकारैर्नावां शतैरवमृद्नति।
जलद-पटलानीकाकीर्ण्णन्नवोत्पलमेचकञ्जलनिधिरिवव्योम व्योम्नस्समोभवदम्बुभिः॥

इस कथन से ज्ञात होता है कि पुलकेशिन् (द्वितीय) ने 'पश्चिमी सागर' की श्री (लक्ष्मी) कही जानेवाली 'पुरी' नाम्नी किसी नगरी पर सैकड़ों पोतों की सहायता से आक्रमण किया था। इस 'पुरी' अथवा 'श्रीपुरी' की पहचान निश्चित रूप से नहीं की जा सकी है, किन्तु उपर्युक्त कथन से इतना तो स्पष्ट है ही कि वह स्थान समुद्र-तट अथवा समुद्र के बीच स्थित था। पोत की सहायता की आवश्यकता विशेष रूप से समुद्र के बीच स्थित स्थान पर आक्रमण करने के लिए ही हुआ करती है; अतः इस कल्पना की

---

१. एपीग्रेफिया इण्डिका ६, पृ० २ के आगे, पंक्ति २१।

पूरी गुंजाइश है कि पुलकेशिन् ने किसी द्वीप पर ही आक्रमण किया था और उसने जिस द्वीप पर आक्रमण किया था, वह एलिफैण्टा द्वीप ही रहा होगा।

इस धारणा को स्वीकार कर लेने पर स्वाभाविक रूप से हमारा ध्यान इस द्वीप पर स्थित उस बस्ती के 'मोर' नाम की ओर जाता है, जो द्वीप के उत्तर-पूर्वी छोर पर स्थित है। यह नाम हमें 'मौर्य' की याद दिलाता है। पुलकेशिन् के उपर्युक्त अभिलेख में उपर्युक्त कथन के ठीक पूर्व यह भी कहा गया है कि उसने अपनी सेना कोंकण भेजकर मौर्यों को पराजित किया था।[1] कोंकणस्थ मौर्यों के चालुक्यों द्वारा पराजित किये जाने की बात विक्रमादित्य (पंचम) के कौथेम ताम्रशासन (शक-संवत् ९३१—१००९ ई०) में भी अंकित है।[2] कोंकण का तात्पर्य सामान्यतः पश्चिमी सागर और पश्चिमी घाट के बीच की लम्बी पट्टी से लिया जाता है; किन्तु उसका एक सीमित प्रादेशिक अर्थ भी है। दोनों ही परिभाषाओं के अन्तर्गत वह भूभाग आता है, जिसके निकट एलिफैण्टा द्वीप स्थित है। अतः कहा जा सकता है कि मौर्यों के विरुद्ध किये गये अभियान के समय ही पुलकेशिन्ने श्रीपुरी (पुरी) अर्थात् एलिफैण्टा पर आक्रमण किया था। इस प्रकार इस द्वीप के मौर्य के अधीन होने की बात कही जा सकती है।

इन मौर्यों का सम्बन्ध मगध के मौर्यों से किसी प्रकार था या नहीं, यह तो किसी प्रकार कहा नहीं जा सकता, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सम्राट् अशोक के समय मौर्यो के विस्तृत साम्राज्य के अन्तर्गत पश्चिमी भारत निस्संदिग्ध रूप से था, और एलिफैण्टा द्वीप मुख्य स्थल-भाग के इतने निकट है कि यह भी सहज भाव से कहा जा सकता है कि जो मूल भू-भाग का शासक था, उसीका अधिकार इस द्वीप पर भी रहा होगा। किन्तु, मौर्य-सामाज्य के पतन के पश्चात् उसपर मगध के मौर्यों का किसी प्रकार का कोई अधिकार था, कहना कठिन है। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि कोंकणस्थ मौर्यों के शासन से पूर्व भी इस द्वीप का कुछ महत्त्व था। सन् १८६९ ई० में इस द्वीप में कहीं उत्खनन करते समय हलके रक्ताभ मूँगिया पत्थर (कार्नेलियन) की ०.४३५ इंच लम्बी और ०.३५ इंच चौड़ी एक मुहर मिली थी, जिसके सामने का भाग अण्डाकार (०.३७ इंच लम्बा और ०.२६ इंच चौड़ा) था और उसपर पाँचवीं-छठी शती की लिपि में **'नारायण'** नाम अंकित था। इस मुहर को पुरातत्त्वविद् बर्जेस ने भाऊदाजी के संग्रह में देखा था। इस मुहर के आधार पर इस द्वीप के पाँचवीं-छठी शती में ऐश्वर्यवान् रहने का अनुमान किया जा सकता है।

इस प्रकार एलिफैण्टा द्वीप के प्राचीन इतिहास का जो रूप बनता है, उसके आधार पर सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि आरम्भ में इस द्वीप पर मौर्यों का

१. कोंकणेषु यदादिष्ट-चण्डदण्डाम्बुवीचिभिः। उदस्तारस्तरसा मौर्य-पल्वलाम्बुसमृद्धयः॥ वही, पंक्ति २०।

२. इण्डियन ऐण्टीक्वैरी, १६; पृ० १५ आदि।

शासन था। उन्हें पराजित कर चालुक्यों ने इसपर अधिकार किया। फिर चालुक्यों को पराजित कर राष्ट्रकूटों ने इसपर अपना अधिकार जमाया और उन्हें तैलप (द्वितीय) के शासनकाल (लगभग ९९७ ई०) में कल्याणी के चालुक्यों ने हराया। उनके बाद इस भूभाग पर यादवों का अधिकार हुआ। ये सभी राजवंश एक के बाद एक देश के पश्चिमी भाग पर शासन करते रहे।

तेरहवीं शती के अन्त में (सन् १२९४ ई० में) यादवों को अलाउद्दीन खिलजी ने पराजित किया। अतः हो सकता है, इस द्वीप पर भी उसका अधिकार हुआ होगा। पन्द्रहवीं शती के अधिकांश भाग और सोलहवीं शती के प्रारम्भ तक यह भूभाग अहमदाबाद के मुसलमान शासकों के अधीन रहा होगा, किन्तु इस काल का कोई चिह्न इस द्वीप पर ज्ञात नहीं होता।

यह द्वीप सन् १५३४ ई० में पुर्त्तगालियों के अधिकार में आया, और पुर्त्तगाली शासकों ने इसे १०५ परडू[1] (लगभग साढ़े बावन रुपये) के वार्षिक लगान पर जाओ पाइरे नामक व्यक्ति को दे दिया। यह द्वीप उसके अधिकार में सन् १५४८ ई० तक रहा। तदनन्तर वह मैन्युएल रेवेलो द' सिल्वाँ के कब्जे में आया और उसने उसे अपनी बेटी डोना रोजा मेरिया मैन्युअल द'अलमीडा को दे दिया।

सन् १६८२ ई० के आसपास इस द्वीप के पुर्त्तगाली अधिकारियों को मराठों से खतरा उत्पन्न हो गया था। कहा जाता है कि शम्भाजी ने पुर्त्तगालियों के विरुद्ध उस द्वीप पर किलेबन्दी करने की तैयारी की थी। कदाचित् शिवाजी ने भी इस द्वीप की पहाड़ी चोटी पर किला बनाने की बात की थी ताकि वहां से बम्बई के साथ-साथ समुद्र पर भी अधिकार बनाये रखा जा सके। पर अनेक कारणों से इसके लिए कोई अवसर आ नहीं पाया।

सन् १७७४ ई० के दिसम्बर में यह द्वीप अँगरेजों के अधिकार में आया और बम्बई के बन्दरगाह की सुरक्षा के लिए इस द्वीप की पश्चिमी पहाड़ी के ऊपर भारी तोपें खड़ी की गईं, पर इस द्वीप का यह सामरिक महत्त्व अधिक दिनों तक नहीं रहा। इस द्वीप का महत्त्व उसकी पहाड़ियों के पत्थर को काटकर बनायी गई प्राचीन गुफाओं (लयणों)[2] के कारण है। पर इन लयणों की पुर्त्तगालियों के अधिकार-काल में सर्वथा उपेक्षा की गई। उपेक्षा ही नहीं की गई, उनके विनाश के भी प्रयास किये गये। उनकी ओर लोगों का ध्यान इस द्वीप के अँगरेजों के हाथ में आने के बाद ही गया। किन्तु, उनकी ओर लोगों का

---

१. भारतीय आधे रुपये मूल्य का पुर्त्तगाली सिक्का। कतिपय अँगरेजी कोषों में इसे चार शिलिंग मूल्य का सिक्का कहा गया है, जो भ्रामात्मक है।

२. पर्वतों में काटकर बनाये गये वास्तुओं को, उन वास्तुओं में प्राप्त अभिलेखों में 'लेण' के नाम से अभिहित किया है। 'लेण' प्राकृत रूप है और 'लयण' उसका संस्कृत रूप। इस शब्द का प्रयोग डा० परमेश्वरी लाल गुप्त ने 'भारतीय वास्तु-कला' नामक पुस्तक में किया है। उसे यहाँ ग्रहण किया गया है।

ध्यान विशेष रूप से तब आकृष्ट हुआ जब सन् १८७५ ई० में इस द्वीप पर ब्रिटिश सम्राट् सप्तम एडवर्ड को, जो उन दिनों वेल्स के राजकुमार-मात्र थे, प्रीतिभोज दिया गया। तबसे इस द्वीप पर बम्बई के निवासी तथा बम्बई जानेवाले सैलानी दोनों ही लयणों को देखने अथवा पिकनिक मनाने इस द्वीप पर निरन्तर हज़ारों की संख्या में आते रहते हैं।

बम्बई से लोग इस द्वीप पर नाव अथवा मोटर लांच से जाते हैं। नावें कर्नाक बन्दर के निकट स्थित **फेरी ह्वार्फ**, जिसे वहाँ के लोग **भाउ का धक्का** के नाम से पुकारते हैं, नित्य आया जाया करती हैं। नावों का उपयोग मुख्यत: द्वीपवासी लोग ही करते हैं। वे सुबह को बेचने के लिए अपना सामान लाते हैं और तीसरे पहर लौट जाते हैं। नाव से जाने में लगभग दो घण्टे लगते हैं। मोटर-लाँच अपोलो बन्दर से, जो गेट-वे ऑफ इण्डिया के नाम से अधिक प्रख्यात है, जाती और आती हैं। गेट-वे ऑफ इण्डिया उस तोरण-द्वार का नाम है, जो सन् १९११ ई० में ब्रिटेन के तत्कालीन सम्राट् पंचम जार्ज और सम्राज्ञी मेरी के भारत-आगमन की स्मृति में बनाया गया था। वे लोग इसी स्थान पर उतारे गये थे। ठीक इसके सामने ही सुप्रसिद्ध ताजमहल होटल है। पहले यहाँ से केवल एक मोटर-लाँच एलिफैण्टा जाती और आती थी और वह जाड़े के दिनों में नित्य दो बार प्रात:काल साढ़े आठ बजे और तीसरे पहर ढाई बजे जाती थी। अन्य मौसम में वह केवल रविवार को चलती थी। बरसात में उसका चलना बन्द रहता था। परन्तु, अब सैलानियों की नित्यप्रति बढ़ती संख्या के कारण नित्य असंख्य संख्या में जाती हैं। उनका चलना सुबह आठ बजे से आरम्भ हो जाता है और जैसे ही उनमें सवारियाँ भर जाती हैं, वे चल देती हैं। ११ फरवरी, १९६८ ई० को, जिस दिन मैं एलिफैण्टा गया था, उसी दिन ट्रेवेल ऐण्ड ट्यूब कम्पनी की एम० बी० शालीमार नामक खुशनुमा नई सर्विस आरम्भ हुई थी। मोटर-लांच से जाने में लगभग पौन घण्टा लगता है।

नाव से जानेवाले लोगों को द्वीप के दक्षिणी-पूर्वी सिरे पर लगभग उस जगह उतरना होता है, जहाँ पहले-पहल पुर्तगाली उतरे थे और जिसके निकट हाथी की वह प्रतिमा थी, जिसके नाम पर उन्होंने इसका नामकरण किया। नाव से उतरकर यात्रियों को यहाँ से पहले कुछ दूर दक्षिण की ओर, फिर उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग समुद्र के समानान्तर चल कर दोनों पर्वतों के बीच की घाटी के दक्षिणी सिरे तक पहुँचना होता है। फिर घाटी में होकर पूर्वी पर्वत के किनारे-किनारे सीधे उत्तर की ओर चलकर वहाँ तक जाना होता है, जहाँ पूर्वी और पश्चिमी दोनों पर्वत एकाकार हो गये हैं। (देखिए मानचित्र)। इस प्रकार नाव से जानेवालों को लयणों तक पहुँचने के लिए लगभग डेढ़ मील चलना पड़ता है। (फलक ४)

मोटर-लांच से जानेवालों को अधिक सुविधा है। मोटर-लाँच उन्हें द्वीप के उत्तर-पश्चिमी किनारे के लगभग बीचो-बीच उस स्थान पर उतारती है, जहाँ से केवल दो फर्लांग चलकर सीधे लयणों तक पहुँचा जा सकता है। इस जेट्टी (लांच रुकने की

जगह) से लयण तक पहुँचने के लिए एक पक्की पतली सीढ़ियोंवाला रास्ता बना है (फलक ५, ६)। इसे, वहाँ लगे एक पटल के अनुसार सन् १८५४ ई० में ठाकरसी करमसी रणमल लोहाना नामक व्यापारी ने बनवाया था। इसकी सीढ़ियाँ काफी सुगम हैं और उनपर चलकर आराम के साथ ऊपर पहुँचा जा सकता है। किन्तु, यदि किन्हीं कारणों से कोई स्वयं चलकर ऊपर न जा सके तो उसके लिए जेट्टी पर ही कुर्सीनुमा पालकी उपलब्ध हो जाती है।

ऊपर पहुँचने पर लगभग समुद्र-तल से २५० फुट की ऊँचाई पर उत्तर-पूर्वमुखी ८० गज लम्बा और ४० गज चौड़ा सपाट मैदान है, जिसे आस-पास के मलवे को जमा कर लोक-निर्माण-विभाग ने तैयार किया है। इसके समुद्र के ओरवाले हिस्से को रेलिंग लगाकर सुरक्षित बना दिया गया है। यहाँ से आसपास के दृश्यों का अच्छी तरह सिंहावलोकन किया जा सकता है (फलक ७-८)। इसी मैदान की दूसरी दिशा में प्रथम लयण हैं, उनकी विस्तृत चर्चा आगे के परिच्छेद में की जायेगी। यहाँ पर्यटकों की सुविधा के लिए एक छोटी-सी अतिथिशाला है; एक रेस्ट्राँ भी है, जहाँ चाय, कॉफी, ठंढा पेय तथा नाश्ते का सामान सुलभ रहता है। इस मैदान से जरा ऊँचाई पर दक्षिण की ओर पत्थर का बना एक छोटा-सा सुरुचिपूर्ण निवास-गृह है, जहाँ पुरातत्त्व विभाग की ओर से संरक्षक (केयर-टेकर) रहता है। इस भवन के ऊपरी छज्जे से उत्तर की ओर बम्बई की महानगरी का और दक्षिण की ओर पहाड़ियों के मनोरम दृश्य का आनन्द लिया जा सकता है।

लयण सम्बन्धी अनुश्रुतियाँ और इतिहास

एलिफैण्टा (घारापुरी) के लयणों (गिरि-गुहाओं) के सम्बन्ध में लोगों के बीच अनेक प्रकार की दन्तकथाएँ और अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं। एक किंवदन्ती इसका सम्बन्ध महाभारत के पंच पाण्डवों से जोड़ती है। दूसरी अनुश्रुति के अनुसार इसका निर्माण श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध और शोणितपुर के असुरराज बाणासुर की अनिन्द्य सुन्दरी दुहिता उषा के गन्धर्व-विवाह के समय हुआ था। हरिवंशपुराण के उत्तरार्द्ध में उषा और अनिरुद्ध की प्रेम-कथा का विस्तार के साथ वर्णन है। तदनुसार उषा की सहेली चित्ररेखा ने विभिन्न देशों के राजकुमारों के चित्र बनाकर दिखाये। उषा एक दिन स्वप्न में अनिरुद्ध के चित्र पर आसक्त हो गई और उसके वियोग में व्याकुल रहने लगी। अपनी सखी के इस दुःख को दूर करने के लिए चित्ररेखा ने द्वारिकापुरी से अनिरुद्ध का अपहरण किया और अपहरण कर उसे यहीं इसी द्वीप पर ले आई; और शोणितपुर, जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह कहीं पूर्वी इराक में था, जाने से पूर्व यहीं उषा और अनिरुद्ध का प्रेम पल्लवित हुआ था। उसी क्रम में एलिफैण्टा के इन लयणों का निर्माण हुआ। तीसरी जनश्रुति इन गुफाओं के निर्माण का श्रेय यवन-विजेता सिकन्दर

को देती है। किन्तु इन सभी अनुश्रुतियों में कोई सार नहीं है, वे मनगढ़न्त किंवदन्तियाँ मात्र हैं।

हमारे पौराणिक एवं इतर प्राचीन साहित्य में प्रायः यह कहा गया है कि हमारे ऋषि और मुनि गुफाओं और कन्दराओं में रहा करते थे। इन गुफाओं और कन्दराओं का जो परिचय इन उल्लेखों से मिलता है, उनसे ज्ञात होता है कि वे मानव-निर्मित किसी प्रकार के वास्तु न होकर पर्वतों में बने प्राकृतिक गह्वर-मात्र ही थे। उन्हीं में प्राचीन ऋषि-मुनि निवास करते थे। इसका समर्थन राजगृह (बिहार)-स्थित उन गिरि-गुहाओं से होता है, जिनका सम्बन्ध बौद्ध-अनुश्रुतियों में बुद्ध के साथ जुड़ा हुआ है। राजगृह में जरासन्ध की बैठक के नाम से प्रसिद्ध जो वास्तु है, उसके ठीक पीछे एक गिरि-गुहा है, उसमें, फाह्यान के कथनानुसार भगवान् बुद्ध दोपहर के भोजन के पश्चात् समाधिस्थ होकर बैठा करते थे। इसी प्रकार वैभारगिरि के उत्तरी भाग में सात गिरि-गुहाएँ हैं। उनकी पहचान बौद्ध-साहित्य में वर्णित सप्तपर्णी गुहा से की जाती है। इसी प्रकार गृध्रकूट पर्वत पर भी कुछ गिरि-गुहाएँ हैं, जिनका सम्बन्ध चीनी यात्रियों ने भगवान् बुद्ध और उनके शिष्य आनन्द से बताया है। एक अन्य गिरि-गुहा का सम्बन्ध बुद्ध-द्वेषी देवदत्त से जोड़ा जाता है। ये समस्त गुहाएँ प्राकृतिक हैं और इनमें मानवीय हाथ का किसी प्रकार का योग परिलक्षित नहीं होता। ये इस बात के स्वतःसिद्ध प्रमाण हैं कि कम-से-कम भगवान् बुद्ध के समय तक पर्वतों को काटकर गुहाएँ (लयण) बनाने का प्रचलन इस देश में नहीं हुआ था; यदि हुआ रहता तो भगवान् बुद्ध के अनुयायियों ने निश्चय ही उनके निवास के लिए एक-आध लयण बनवाये होते। इस परिप्रेक्ष्य में एलिफैण्टा की गुहाएँ किसी भी प्रकार महाभारत-काल में बनी कही नहीं जा सकतीं और न उनका सम्बन्ध उषा-अनिरुद्ध से जोड़ा जा सकता है। सिकन्दर तो देश के इस भू-भाग में कभी प्रवेश ही नहीं कर सका था; अतः इन लयणों के निर्माण के सम्बन्ध में उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

पर्वतो को काटकर गुफाएँ (लयण) बनाने की विधा का वस्तुतः आरम्भ ईसा-पूर्व तीसरी शती में पहले-पहल सम्भवतः सम्राट् अशोक के समय से हुआ। उसने और उसके पौत्र दशरथ ने गया जिले में स्थित बराबर और नागार्जुनी नामक पहाड़ियों में आजीवकों के निवास के लिए अनेक लयण बनवाये और उनके बाद ही पर्वतों को काटकर भवन बनाने की विधा का अन्यत्र विकास-प्रसार हुआ। देश के पश्चिमी भाग में, जिसमें एलिफैण्टा द्वीप स्थित है, इस विधा का सर्वाधिक प्रचार देखा जाता है। वहाँ पर्वतों में बने पचास से अधिक लयण-समूह ज्ञात हुए हैं, जिनमें एलिफैण्टा का लयण-समूह भी है। इस प्रदेश में छोटे-बड़े लयणों की संख्या ९०० से अधिक है। उनके देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि इस विधा का आरम्भ सर्वप्रथम बौद्धों ने अपने चैत्य और विहार के रूप में किया। उन्हीं के लयण सर्वाधिक संख्या में पाये जाते हैं। लयण-रूपी चैत्य और विहार हीनयानियों और महायानियों—दोनों ही बौद्ध-सम्प्रदायों के हैं।

इनका निर्माण ईसा-पूर्व की दूसरी शती से लेकर ईसा की छठी-सातवीं शती तक होता रहा। इन बौद्ध-चैत्यों और विहारों की देखा-देखी ही ब्राह्मण-धर्म के अनुयायियों-शैवों और ब्राह्मणों, दोनों ने अपनाया। किन्तु, इसका विशेष प्रचार शैवों के बीच ही हुआ। ब्राह्मण-धर्म के अनुयायियों ने इस वास्तु-विधा को पहले-पहल कब अपनाया, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। बर्जेस ने ब्राह्मण-लयणों की चर्चा करते हुए बताया है कि पोरफाइरी नामक किसी विदेशी यात्री के उल्लेख से ऐसा जान पड़ता है कि ईसवी सन् की द्वितीय शती के अन्त से पूर्व ही शैव लयण बनने लग गये थे। उसने किसी लयण की चर्चा करते हुए स्पष्ट रूप से अर्धनारीश्वर के मूर्त्तन का उल्लेख किया है।[1] स्वयं बर्जेस ने कुछ शैव-लयणों के द्वितीय शती के होने का अनुमान किया है, किन्तु, प्रमुख रूप से उनका निर्माण ई० सन् की चौथी शती से पूर्व नहीं हुआ और उस समय से वे ई० सन् की आठवीं शती तक बनते रहे। एलिफैण्टा-स्थित प्रायः सभी लयण शिव-मन्दिर ही हैं और प्रथम लयण में अर्धनारीश्वर का मूर्त्तन हुआ है। इस मूर्त्तन के कारण सहसा ध्यान पोरफाइरी के कथन की ओर जाता है और धारणा होती है कि उसका संकेत कदाचित् इसी लयण की ओर रहा होगा। परन्तु, ई० सन् की द्वितीय शती के जो ब्राह्मण-लयण ज्ञात हैं, वे कला की दृष्टि से उतने विकसित नहीं हैं, जितने कि एलिफैण्टा के शिव-लयण। अतः यह कहना ही अधिक संगत होगा कि उनका निर्माण उस काल में अर्थात् ई० सन् की चौथी और आठवीं शती के बीच किसी समय हुआ होगा, जब शैव लयणों की परम्परा अपने उत्कर्ष पर थी।

इस प्रसंग में मुख्य रूप से ज्ञातव्य यह है कि पर्वतों के अन्तर्भाग को छेनी और हथौड़े की सहायता से भेदकर लयणों का निर्माण बड़ी श्रम-साध्य और धन-साध्य साधना थी। प्रस्तर-खण्डों को काटकर उन्हें अनुपम-अद्वितीय रूप प्रदान करने में संगतराश और मूर्त्तिकारों की सर्जन-शक्ति को सफल बनाने के लिए धनपतियों का सहयोग परमावश्यक था। देश में खनित लयणों से सम्बद्ध अनेकानेक अभिलेख मिले हैं। उनसे बार-बार यही प्रतिध्वनित होता है कि उन्हें तत्कालीन शासकों ने स्वयं अपने संरक्षण में निर्मित कराया अथवा उनके वैभवपूर्ण शासन-काल में उनके निर्माण कराने में उनके प्रभावशाली अधिकारियों और धनाढ्य व्यापारियों तथा उनकी श्रेणियों और निगमों का हाथ रहा। अतः यह सहज भाव से कहा जा सकता है कि एलिफैण्टा का निर्माण भी इसी प्रकार के किन्हीं साधन-सम्पन्न सूत्रों द्वारा ही हुआ होगा। इस द्वीप के राजनीतिक इतिहास की जो चर्चा हमने पिछले पृष्ठों में की है, उससे इस द्वीप के शासकों के रूप में मौर्य, चालुक्य और राष्ट्रकूट ये तीन ही राजवंश प्रमुख रूप से सामने आते हैं। इनमें मौर्यों की किसी विशिष्ट शक्ति और साधन-सम्पन्नता का परिचय किसी सूत्र से नहीं मिलता। इसलिए कहना कठिन है कि उन्होंने इन लयणों का निर्माण कराया होगा। इसके विपरीत चालुक्यों और राष्ट्रकूटों की शक्ति-सम्पन्नता प्रख्यात है। उनके शासन-काल में अनेक लयणों के निर्माण किये जाने की बात ज्ञात है। अतः इस आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि इसका निर्माण ई० सन् की सातवीं शती के बाद किसी समय हुआ होगा।

---

१. **फर्गुसन और बर्जस**, केव-टेम्पुल्स ऑव इण्डिया, पृ० ४०१-४०२।

वास्तुकला के निरीक्षण-परीक्षण से बर्जेस इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि एलिफैण्टा का मुख्य मन्दिर आठवीं शती के उत्तरार्ध अथवा नवीं शती के आरम्भ की कृति है।[1] फर्गुसन इसी आधार पर उसे इससे कुछ पहले काल का अनुमान करते हैं। उन्होंने मुख्य मन्दिर की तुलना एलोरा के कतिपय लयण-मन्दिरों से कर यह मत स्थिर किया है कि सन् ७५० ई० तक यदि यह लयण पूरा न बना हो तो भी उसका अधिकांश तैयार हो गया रहा होगा।[2] हीरानन्द शास्त्री ने मुख्य मन्दिर की मूर्तिकला के आधार पर इसका समय निश्चित करने का प्रयास किया है। वे इसे गुप्तकाल की कृति मानते हैं।[3] भारतीय इतिहास में गुप्तकाल ३५० से ६५० ई० तक माना जाता है। इन तीन सौ वर्षों की लम्बी अवधि के बीच इसका निर्माण कब हुआ, इस सम्बन्ध में वे कुछ नहीं कहते।

इन लयणों की तिथि निश्चित करने का सबसे प्रामाणिक साधन एक अभिलेख था, जिसका उल्लेख पुर्त्तगाली इतिहासकार डियोगो द काउतो ने अपनी पुस्तक 'दा एशिया' में इन शब्दों में किया है : "जब पुर्त्तगालियों ने वसई[4] और उसके अनुवर्त्ती क्षेत्रों पर अधिकार किया तो वे लोग इस मन्दिर में गये और द्वार पर लगी एक प्रसिद्ध चट्टान को हटाया। उसपर बड़े और सुघर अक्षरों में एक लेख लिखा हुआ था। भारत के पुर्त्तगाली प्रशासक ने बहुत प्रयास किया कि कोई ऐसा हिन्दू या मूर मिले, जो उस लेख को पढ़ सके। किन्तु, जब उसे पढ़नेवाला कोई न मिल सका तब उसने इस चट्टान को अपने राजा के पास भेज दिया। राजा डी० जाओ (तृतीय) ने भी उसे पढ़वाने की चेष्टा की, पर वह भी सफल न हो सका। इस प्रकार वह पत्थर उसके पास पड़ा रहा।[5] किन्तु उसका अब पता नहीं है।"

इस विषय पर कदाचित् कुछ प्रकाश उन ताम्रपत्रों से भी पड़ता, जो इस द्वीप के पूर्वोत्तर भाग में मिट्टी हटाते समय मिले थे। कहा जाता है कि उन ताम्रपत्रों को ठेकेदार हेराल्ड स्मिथ सन् १८६५ ई० में अपने साथ इंगलैंड लेते गये थे। वे ताम्रपत्र अभीतक अप्रकाशित हैं और उनके सम्बन्ध में यह भी जानकारी नहीं है कि उनमें क्या लिखा था और अब वे कहाँ हैं।

सम्प्रति सभी दृष्टियों को समन्वित करने पर यही कहा जा सकता है कि एलिफैण्टा के लयणों का निर्माण ई० सन् की सातवीं शती के आस-पास हुआ होगा।

★

१. फर्गुसन और बर्जेस, केव-टेम्पुल्स ऑव इण्डिया, पृ० ४६७।
२. वही, पा० टि० २।
३. गाइड टु एलिफैण्टा।
४. इसे पुर्त्तगाली Bacaim और अंगरेज Bessein के रूप में लिखते रहे हैं, जिसके कारण लोग इसे वेसीम या वेसीन कहते हैं; पर स्थानीय निवासी इसे वसई ही कहते हैं।
५. दा एशिया (लिस्बन,१७७८), पृ० २५९; बर्जेस द्वारा केव-टेम्पुल ऑव इण्डिया, पृ० ४६७ पर उद्धृत।

लयण और उनका वास्तु-विन्यास

एलिफैण्टा (घारापुरी) स्थित लयणों की अबतक ज्ञात संख्या सात है। इनमें से पाँच तो पश्चिमी पहाड़ी में और दो पूर्वी पहाड़ी में काटे गये हैं। परिचय की सुविधा के लिए पुरातत्त्व-विभाग ने इन लयणों को सात तक की संख्याओं की संज्ञा दी है। प्रथम पाँच संख्याएँ पश्चिमी पहाड़ी के लयणों के लिए प्रयुक्त की गई हैं और पूर्वी पहाड़ी के लयण छठे और सातवें लयण के नाम से पुकारे गये हैं। इन लयणों में केवल प्रथम लयण ही सबसे बड़ा और आकर्षक है। उसी का विशेष महत्त्व है। वह एक शिव-मन्दिर है।

प्रथम लयण : शिव-मन्दिर

प्रथम अथवा मुख्य लयण (शिव-मन्दिर) समुद्र-तल से २५० फुट की ऊँचाई पर उस मैदान के सामने है, जिसकी चर्चा हम पहले कर आये हैं और जहाँ दर्शक मोटर-लॉच-वाली जेट्टी से चलकर सीढ़ियों द्वारा सीधे पहुँचते हैं। यह लयण उत्तर रुख का है। परिचय-सुविधा के लिए इसे सहज भाव से स्पष्टतः तीन खण्डों में विभाजित किया जा सकता है और उन्हें पूर्वी, पश्चिमी और मध्य खण्डों की संज्ञा दी जा सकती है (देखिए भू-विन्यास)। इन खण्डों में मध्य खण्ड प्रधान है। यह मध्य खण्ड पूर्व, पश्चिम और उत्तर की ओर से पर्वत काटकर बनाया गया है। पूर्व और पश्चिम की ओर काटे गये पर्वत के क्रम में इस लयण के पूर्वी और पश्चिमी खण्ड हैं। उत्तर की ओर पर्वत उक्त मैदान के सामने काटा गया है।

लयणों में मध्य अर्थात् मुख्य खण्ड को बनाने के लिए सामने अर्थात् उत्तर की ओर पर्वत को काटकर एक हलका-सा, किन्तु चौड़ा प्रवेश-पथ बनाया गया है, जिसके दोनों ओर पर्वत के काटने से बनी ४० फुट ऊँची दीवारें हैं। प्रवेश-पथ के छोर पर लयण में जाने के लिए दो पगों की एक सीढ़ी है। सीढ़ी के छोर से पीछे तक उत्तर-दक्षिण लयण का यह मुख्य भाग लगभग १३० फुट लम्बा है और पूरब-पश्चिम भी लगभग उतना ही चौड़ा है। फिर भी आकार में यह वर्गाकार नहीं है। इसके आकार में अनेक विसंगतियाँ हैं। इसकी लम्बाई-चौड़ाई सर्वत्र एक-सी नहीं है। इसकी रेखाएँ और कोण भी सम नहीं हैं। इसी प्रकार इस लयण की गहराई और ऊँचाई भी पूर्व-पश्चिम समान नहीं है। ये विसंगतियाँ अकेले इस लयण में नहीं है, वरन् पर्वत में काटकर बनाये जाने के कारण, अनेक प्रकार की कठिनाइयों के परिणामस्वरूप न्यूनाधिक प्रायः सर्वत्र सभी लयणों में पाई जाती हैं। किन्तु, ये दोष इस प्रकार के हैं, जो आँखों को खटकते नहीं; नाप-जोख करने पर ही उनकी ओर ध्यान जाता है। अस्तु, लयण के इस खण्ड का उत्तर-दक्षिण पाँच विभागों में बाँटकर परिचय प्राप्त

किया जा सकता है : (१) बरसाती (पोर्टिको), (२) उत्तरी अर्ध-मण्डप, (३) मुख्य मण्डप, (४) दक्षिणी अर्ध-मण्डप और (५) पृष्ठ कक्ष-युक्त अन्तराल।

सबसे पहले उत्तर की ओर अर्थात् सीढ़ियों के आगे एक बरसाती (पोर्टिको) है, जो आकार में साढ़े तिरपन फुट (५३′ ६′) लम्बी और साढ़े सोलह फुट (१६′ ६″) चौड़ी है (फलक ९)। सामने की ओर इस बरसाती के पूर्वी-पश्चिमी सिरों पर दो अर्ध-स्तम्भ हैं और बीच में जो दो स्तम्भ थे, वे अब टूटकर नष्ट हो गये हैं। इस बरसाती के सामने ऊपर पूरी लम्बाई में एक छज्जा (ओलती) था, जो अब गिर गया है। सामने की तरह ही इस बरसाती के पीछे की ओर भी पूर्वी और पश्चिमी सिरों पर दो अर्ध-स्तम्भ हैं और बीच में दो स्तम्भ। इस प्रकार यह बरसाती चार अर्ध-स्तम्भों और चार स्तम्भों से बनी है। पूर्व और पश्चिम की ओर अर्ध-स्तम्भों के बीच, जो चौखटनुमा दीवार है, उस पर उच्चित्र (उभरी हुई मूर्त्तियाँ) उत्कीर्ण हैं। पूर्वी चौखटे में लकुलीश (फलक १६, १७) का और पश्चिमी चौखटे में नटराज (फलक १८, १९) का उच्चित्रण हुआ है।

इस बरसाती के बाद साढ़े नब्बे फुट (९०′ ६″) लम्बा और साढ़े सोलह फुट (१६′ ६) चौड़ा अर्ध-मण्डप है, जो बरसाती के पिछले भाग को पूर्व और पश्चिम की ओर लगभग अठारह-अठारह फुट बढ़ाकर बनाया गया है। इस प्रकार इसमें सामने की ओर बरसाती के पिछले हिस्सेवाले दो अर्ध-स्तम्भ तथा दो पूर्ण स्तम्भ हैं और पूर्व तथा पश्चिम की ओर खाली सपाट दीवार है। पीछे की ओर किनारों पर अर्ध-स्तम्भ है और बीच में चार स्तम्भ हैं, जिनमें दो बरसाती वाले अर्ध-स्तम्भों के और दो उसके स्तम्भों के सामने पड़ते हैं।

इस अर्ध-मण्डप के पीछे (दक्षिण) मुख्य मण्डप है, जो लगभग आयताकार १३० फुट लम्बा (वस्तुतः उत्तरी सिरे पर १३० फुट और दक्षिणी सिरे पर १३१ फुट ५ इंच) और साढ़े चौवन फुट (वस्तुतः पूर्वी सिरे पर ५४′ १०″ और दक्षिणी सिरे पर ५४′ ७″) है (फलक १०)। लम्बाई में यह उत्तरी और दक्षिणी अर्ध-मण्डपों के दायें और बायें लगभग अठारह-अठारह फुट बढ़ाकर बनाया गया है। यह मण्डप पूर्व और पश्चिम की ओर एकदम खुला हुआ है (फलक ११-१२)। उत्तरवाली बरसाती की तरह ही इन दोनों ओरों के सिरों पर केवल अर्ध-स्तम्भ और बीच में दो स्तम्भ हैं। इस प्रकार लयण के इस भाग को तीन ओर से खुला कहा जा सकता है। इनसे मण्डप के भीतर पर्याप्त प्रकाश आता है। इस मण्डप के पूर्वी और पश्चिमी सिरों पर बीच में जो दो स्तम्भ हैं, उनकी सीध में पूर्व से आरम्भ कर चार-चार स्तम्भों की दो पाटें हैं, जो मण्डप के दो-तिहाई भाग तक जाकर समाप्त हो जाती हैं। फिर उनके आगे उन्हींकी सीध में एक वर्गाकार कमरा है, जो मण्डप के धरातल से साढ़े तीन फुट की ऊँचाई पर है। यह वस्तुतः गर्भगृह है। इसके चारों ओर एक-एक द्वार है। इन द्वारों तक पहुँचने के लिए छह पगों की सीढ़ियाँ हैं। प्रत्येक द्वार के

अगल-बगल भीमकाय द्वारपाल बने हुए हैं, जिनकी ऊँचाई पन्द्रह फुट से कुछ कम अथवा कुछ अधिक है। ये द्वारपाल एक पतले आधार पीठ पर खड़े हैं और इनमें से कुछ के साथ कुब्जक भी हैं (फलक १३,१४,१५)। भीतर द्वार के दोनों किनारों पर और नीचे किवाड़ों को लगाने के लिए छेद बने हुए हैं। भीतर से यह गर्भगृह साढ़े उन्नीस फुट वर्गाकार है। उसके बीच में तीन फुट ऊँचा पौने दस फुट का एक वर्गाकार चबूतरा है, जिसके बीच में लिंग प्रतिष्ठित है, जो लयण के पत्थर से भिन्न पत्थर का बना है और अलग से बैठाया गया है। इसका निचला भाग २ फुट १० इंच वर्गाकार है, ऊपर का भाग गोल है और उसका व्यास भी लगभग तीन फुट है और वह ऊँचाई में भी तीन फुट है। लिंग के अगल-बगल चबूतरे को योनि की अभिव्यक्ति के लिए काट दिया गया है और उसमें उत्तर की ओर नाली निकली हुई थी, जो अब टूट गई है।

मण्डप की उत्तरी और दक्षिणी दीवारों के कोनेवाले सपाट पटल पर उत्तरी बरसाती की दीवारों के समान ही उच्चित्रों का मूर्त्तन हुआ है। उत्तरी दीवार के पूर्वी भाग में रावण द्वारा शिव-सहित कैलाश उठाने का (फलक २०, २१) और पश्चिमी भाग में अन्धकासुर-वध (फलक २२) का दृश्य अंकित है। इसी प्रकार दक्षिणी दीवार के पूर्वी सिरे पर मानिनी पार्वती का (फलक २३,२४) और पश्चिमी सिरे पर कल्याण-सुन्दर का अंकन (फलक १२, २५) किया गया है।

इस मुख्य मण्डप के दक्षिण, उत्तरी भाग के अर्द्धमण्डप के अनुकरण पर, उसी ढंग और उसी आकार का एक दूसरा अर्ध-मण्डप है। इस मण्डप के उत्तरी ओर के सिरे पर दोनों कोनों में अर्ध-स्तम्भ और बीच में चार स्तम्भ हैं। दक्षिण की ओर दोनों किनारों पर लगभग १८-१८ फुट लम्बी सादी दीवार है, दीवारों के भीतरी कोनों पर अर्ध-स्तम्भ बने हैं। इन अर्ध-स्तम्भों के बीच दो स्तम्भ हैं। इस प्रकार अर्ध-मण्डप का यह सिरा उत्तरी मण्डप के उत्तरी सिरे के समान ही है।

इस अर्ध-मण्डप के पीछे (दक्षिण) दो अर्ध-स्तम्भों तथा दो स्तम्भों के सहारे बना एक अन्तराल है, जो लयण के उत्तरी सिरे पर बने बरसाती का जोड़ प्रस्तुत करता है और लम्बाई-चौड़ाई में भी लगभग उसी के बराबर है। इस अन्तराल के अगल-बगल (पूर्वी और पश्चिमी सिरों पर) एक-एक कोठरी है, जो १८ फुट लम्बी, १६ फुट चौड़ी, और ९ फुट ऊँची है। ये कोठरियाँ भीतर एकदम सादा हैं। इन कोठरियों का प्रयोग कदाचित् भाण्डारघर अथवा पुजारियों के निवास के रूप में होता रहा होगा।

अन्तराल की पिछली (दक्षिणी) दीवार तीन भागों में विभक्त है। इन भागों का विभाजन ढाई-ढाई फुट चौड़े दो अर्ध-स्तम्भों द्वारा किया गया है, जिनपर कुब्जक-सहित द्वारपालों का मूर्त्तन हुआ है। पूर्व की ओर के द्वारपाल की ऊँचाई साढ़े तेरह फुट है। उसकी दाहिनी ओर कुब्जक अर्ध-पर्यंक आसन में बैठने की स्थिति में है। इस द्वारपाल का अधो-भाग काफी क्षतिग्रस्त है (फलक २७)। पश्चिमी द्वारपाल पौने तेरह फुट का है और उसके

साथ सात फुट का कुब्जक दाहिनी ओर खड़ा है और उस कुब्जक पर द्वारपाल का दाहिना हाथ टिका है। यह मूर्त्तन काफी अच्छी स्थिति में है (फलक २९)।

इन द्वारपालों से अलंकृत अर्ध-स्तम्भों के बीच साढ़े पन्द्रह फुट की जो जगह है, उसमें धरातल से तीन फुट ऊपर उठकर, साढ़े दस फुट की ऊँचाई में भीतर की ओर साढ़े इक्कीस फुट काटकर एक आयताकार गर्भगृह बनाया गया है, जिसमें एक विशाल, भव्य त्रिमुख मूर्ति है, जो १७ फुट १० इंच जगह घेरे हुई है (फलक २६)। इस गर्भगृह के सामने के दोनों किनारों पर ऊपर-नीचे दरवाजों को पहनाने के लिए छेद है। सामने नीचे फर्श पर एक खाँच बनी है, जिसमें कदाचित् कोई जाली लगाई जाती रही होगी अथवा दर्शकों को दूर रखने के लिए बाड़ (रेलिंग) लगी रही होगी। द्वारपालों की बगल में पूर्व और पश्चिमी भाग में आले के रूप में दीवारों को काटकर उच्चित्रण किया गया है। पूर्वी पटल पर अर्धनारीश्वर का (फलक २७-२८) और पश्चिमी पटल पर गंगाधर शिव (२९-३०) का अंकन है।

इस भू-विन्यास को कुछ लोग उपर्युक्त पाँच विभागों में न बाँटकर एक दूसरे ढंग से देखते हैं। वे उत्तर की बरसाती और दक्षिण की कोठरियों सहित अन्तराल के साथ-साथ मुख्य मण्डप के पूर्व और पश्चिम ओर के उस भाग को, जिनके उत्तरी और दक्षिणी भागों में उच्चित्रण हैं, बरसाती या अर्ध-मण्डप मानकर अलग कर देते हैं और शेष भाग को वे एक ९४ फुट वर्गाकार मण्डप के रूप में देखते हैं। किन्तु, उत्तरी बरसाती और दक्षिणी अन्तराल को जिस प्रकार स्वतन्त्र अंग के रूप में अलग किया जा सकता है, वैसा कोई स्पष्ट विभाजन बरसाती अथवा अर्धमण्डप के अस्तित्व के अनुमान के लिए उपलब्ध नहीं है।

इस लयण के वास्तु-विन्यास की चाहे जिस भी रूप में कल्पना की जाय, तथ्य यह है कि यह लयण सोलह अर्ध-स्तम्भों और चौबीस स्तम्भों से बना विशाल मण्डप है। ये स्तम्भ और अर्ध-स्तम्भ निचले आधे भाग तक चौकोर और सादे हैं। ऊपर वे कटावदार गोल हो गये हैं। इन स्तम्भों के ऊपर गाव-तकियानुमा कटावदार शीर्ष है, जिसके ऊपर चौकोर आधार-युक्त धरण (बरेड़ी) का आलम्बन है। इस आलम्बन पर धरण के अनुकरण पर दो स्तम्भों के बीच एक लम्बी पट्टी बना दी गई है। फर्श और छत दोनों ही समतल नहीं हैं, इस कारण इन स्तम्भों की ऊँचाई भी एक-सी नहीं है। वे सब १५ और १७ फुट के बीच अलग-अलग-ऊँचाई के हैं।

पुर्त्तगालियों ने एलिफैण्टा (घारापुरी) द्वीप पर अधिकार करने के बाद इस लयण के विकृत करने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी। गैरिया द' ओती (१५५० ई०) के कथन से ज्ञात होता है कि पुर्त्तगाली लोग इसमें मवेशी रखते थे। सन् १५७९ में ई० जे० एच्० वान लिन्सचौटेन ने इस गुफा को उपेक्षित तथा दयनीय दशा में पाया था। डाइगो द' काउतो का कहना है कि सतरहवीं शती के आरम्भ में सैनिकों ने इसे काफी तोड़ा-फोड़ा। सन् १६७३ ई० के आसपास पुर्त्तगालियों ने इसकी काफी दुर्दशा की। वे इसे मवेशी बाँधने और चारा

रखने के काम लाते रहे। सन् १७१२ ई० में स्पेनिश सिपाहियों ने केवल प्रतिध्वनि की गूँज सुनने के लिए एक बड़ी तोप से लयण के भीतर अनेक गोले दागे, जिसके कारण अनेक स्तम्भ टूट गये। सन् १७५० ई० में गौस ने इस लयण के भीतर पानी भरा पाया था। उसका कहना है कि पुर्त्तगालियों के आने से पूर्व इस लयण की मूर्त्तियाँ काफी सुरक्षित अवस्था में थीं। पुर्त्तगालियों ने उन्हें तोड़ने-फोड़ने में काफी दिलचस्पी दिखाई और उन्हें तोड़ने के लिए सैनिक शस्त्रों का उपयोग किया। फलत लयण की अधिकांश मूर्त्तियाँ आज अत्यन्त क्षतिग्रस्त अवस्था में पाई जाती हैं।

इस लोकपावन योजना के कार्यान्वयन के लिए निश्चय ही धर्मधुरीण बहुश्रुत शैवों का समागम हुआ होगा और, साथ ही, भास्कर्य-कुशल भास्करों एवं आकलन-चित्रण-प्रवीण कलाविदों का भी बहिरंग और अंतरंग, दोनों प्रकार की साधना-उपासना का यह अवश्य ही उस समय एक अनुपम केन्द्र रहा होगा। इन बारह-तेरह सौ वर्ष पुरानी गुफाओं में अब अतीत की स्मृतियाँ मात्र बाकी बची हैं। फिर भी, इनके जीर्ण-शीर्ण कलेवर के जो कतिपय शोभा-स्थल बचे हैं, वे आज भी समस्त विश्व के कला-साधकों के लिए प्रणम्य हैं। आज भी अन्यत्र उनका कोई सानी नहीं है। यों, पाषाण के नाम से ही कठोरता टपकती है; पर, उन महान् शिल्पियों के हाथों में कुछ ऐसा गुर था कि उन्होंने जैसा चाहा, पाषाणों को गढ़ा। उनके हाथों में पत्थर मानो मोम बन जाते थे। कलाकार की कोमल कल्पना के संस्पर्श से शुष्क पाषाण-खण्ड सजीव हो उठे थे। विरस शिलाओं की छाती में मानों रस-संचार-सा हो गया। मूर्त्तियों पर दृष्टि पड़ते ही उन अज्ञात भास्करों के विराट् सौन्दर्य-बोध, सांस्कृतिक चेतना के सूक्ष्म संस्पर्श और बिम्ब-विधायिनी अपार शक्ति का सहज ही आभास मिलता है। काल के अनगिन थपेड़ों के बीच, उत्थान-पतन के अनेक आघातों से प्रताड़ित इन कलाकृतियों में अब भी अज्ञात कलाकार की रागात्मक चेतना और सामाजिक-सांस्कृतिक अवबोध सुरक्षित हैं। अनेक प्रतिमाएँ यद्यपि खण्डित हो गई हैं, फिर भी उनका कलागत मूल्य अखण्ड और असन्दिग्ध है। उन्हें देखकर सहज ही इसकी कल्पना की जा सकती है कि जिस समय ये लयण खोदे गये, और उनको इस तरह अलंकृत-चित्रित किया गया, उस समय वह भू-भाग कितनी उच्च कोटि की उपासना और कला-साधना से अनुप्राणित रहा होगा। एक ओर शैवधर्म के अध्ययन-अनुष्ठान की कठोर तपस्या चल रही होगी तो दूसरी ओर कला-सर्जन का महान् यज्ञ। कहते हैं कि राष्ट्रकूटवंश के धर्मधुरीण राजकुमारों से मिला धन इन साधकों और कला-सर्जकों को स्थूल आवश्यकताओं की चिन्ता से मुक्त रखता था और वे सौन्दर्य-लोक-सिरजनहार अपनी दिव्य सर्जन-प्रतिभा और कृतित्व के बल पर आत्मोन्नति करते हुए स्वान्तः सुखाय अथवा आदेशजन्य कला-सर्जन के द्वारा अमरत्व की ओर अग्रसर होते थे। शत-सहस्र कलाकारों, कलासंग्राहकों और कलाप्रेमियों की शिवार्चना का यह प्रयोग सचमुच ही बड़ा अनुपम था। यहाँ के भास्कर्य और भित्ति-चित्रण

में तल्लीन कलाकार शिवलोक के अपने गन्तव्य पथ पर उसी प्रकार अग्रसर होते थे, जिस प्रकार ध्यानावस्थित अन्य शैवगण।

इन लयण-मन्दिरों के निर्माण के लिए पर्वत के कठोर अन्तर्भाग को भेदने में तत्पर बलशाली कला-सर्जकों के सहायतार्थ स्त्रियाँ और पुरुष अवश्य रहे होंगे। इन मन्दिरों को सजाने-सँवारने और तत्त्वचित मूर्त्तियों को अलंकृत और चित्रित करने के लिए सरो-सामान की भी तो उतनी ही बड़ी आवश्यकता रही होगी। इस धर्मप्राण निर्माण-कार्य द्वारा वहाँ उन दिनों सहस्रों नर-नारियों का जीवन-निर्वाह अवश्य होता रहा होगा। शैवधर्म में साधु-संन्यासी, विवाहित-अविवाहित, स्त्री-पुरुष, सबको समान रूप से विहित साधना-उपासना के माध्यम से शिवलोक की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने का अधिकार था।

एलिफैण्टा (घारापुरी) के शिवमंदिर में कुशलकर्मा कलाकारों द्वारा प्रस्तुत भास्कर्य और भित्ति-चित्र में भगवान् शिव के विविध रूप और मुद्राएँ प्रदर्शित की गई हैं। एक पाशुपत-व्रतधारी रूप है तो दूसरा अनिन्द्य सुन्दरी पार्वती के साथ परिणय का। एक ओर अर्द्धनारीश्वर की अनुरागमयी मुद्रा है तो दूसरी ओर अंधकासुर को पराजित करने के विजयोल्लास की। एक पटल में गंगावतरण का दृश्य उपस्थित किया गया है तो दूसरे में कैलासोत्तोलन का। इन सबोंके बीच परब्रह्म शिव के प्रतीकात्मक रूप की अदृष्टपूर्व और लोकोत्तर अभिव्यक्ति यहीं प्रकाण्ड त्रिमूर्त्ति में हुई है। इनकी बारीकियों की परख तो कलाकर ही कर सकते हैं, पर इन मूर्त्तियों की एक-एक रेखा और उतार-चढ़ाव में गहन चिंतन और अपूर्व सर्जन-शक्ति परिलक्षित होती है। आराध्य-देव के मुख-मण्डल की मांसपेशियाँ स्वस्थ ही नहीं, अब भी ओज से दिपती दीख पड़ती हैं। वृषभस्कन्ध की हड्डियाँ प्रशस्त, वक्षस्थल पुरुष-प्रतिमान का प्रतीक, हाथ-पाँव सुडौल और लम्बे तथा कटि अस्थूल। सर्वांगसुन्दर सदाशिव की अलौकिक छवि को पार्थिव रूप देने की साधना की गुरुता को आँके तो कौन? इसी तरह शास्त्रानुमोदित श्रेष्ठ शृंगारों से सुसज्जित समस्त सम्मोहन-कौशल से ओतप्रोत गिरिराजकुमारी की मुखाकृति से, अर्द्धनिमीलित नेत्रों से, अंगविक्षेप से, और सौन्दर्य-सौष्ठवपूर्ण देहवल्लरी से जो कृतज्ञता-ज्ञापन, आत्म-समर्पण और पुरुष-हृदय पर विजय पाने के प्रयास की भाव-त्रिवेणी उद्भूत हुई है, उसे देखकर कौन सहृदय भाव-विभोर नहीं हो उठेगा? इन प्रधान मूर्त्तियों के अतिरिक्त, कर्त्तव्यनिष्ठ द्वारपाल और पार्षदगण, चँवरधारिणी यक्षिणी या शृंगारदान अथवा पूजा-पात्र उठानेवाली सेविका आदि के चित्रण भी बड़े सजीव उतरे हैं। उनके मनोहर अंग-सौष्ठव के साथ-साथ केश-विन्यास और अलंकरणों की छटा भी बड़ी ही मनोमुग्धकारिणी है। मिथुन-मूर्त्तियों के गगन-विहार के दृश्यों के साथ-साथ स्थान-स्थान पर स्तम्भों, तोरणों या वितानों पर चित्रित या आमूर्त्तित दृश्य भी बड़े भाव-प्रवण हैं। छेनी-हथोड़े के माध्यम से दिव्य सौन्दर्य की एक-एक रेखा को उत्कीर्ण करने में कितने कष्ट झेले होंगे उन भास्करों ने। पर, जैसाकि महाशिल्पी माइकेल एंजेलो ने इसी तरह

एक अवसर पर कहा था; श्रम से तो और स्फूर्त्ति मिलती है, शक्ति का संचय होता है। यों भी, अपने हाथों किसी पत्थर को सजीव बना देना क्या थकानेवाला काम हो सकता है ?

पुर्त्तगाली वृत्तान्तों से पता चलता है कि इस गुहा-मन्दिर के अन्तर्भाग में, और उसके बाहर भी, भित्ति-चित्रण की लड़ी बड़ी अनोखी थी। मन्दिर की दीवारों और छत पर चित्रित दृश्यों ने इस गुफा के अनुपम भास्कर्य को और भी ऐसा जीवन्त बना दिया था; सारी प्रतिपादित कथा-वस्तु दिव्याभा से उद्दीपित और मुखरित हो उठी थी। लकुलीशवाले प्रकोष्ठ की छत में मूल चित्रकारी के अनुचिह्न अब भी बचे हुए हैं। पुर्त्तगाली लेखकों के विवरणों से ऐसा जान पड़ता है कि इस गुफा की सौन्दर्य-वृद्धि के निमित्त इसके भीतरी भाग की और साथ जुड़े भाग की भी चित्रकारी मूलतः भिन्न-भिन्न रंगों से की गई थी। दकूतो ने इस गुफा को सन् १६०३ ई० में देखा था। उसका कहना है कि सारा भीतरी भाग—खम्भे, मूर्त्तियाँ और अन्य सब कुछ—पहले जातुक (बिटुमेन) और अन्य मिश्रणों से युक्त चूने के लेप से आच्छादित था, जिससे इसकी चमक और सुन्दरता देखते ही बनती थी। ऐसे रंग-चित्रण ने इन मूर्त्तियों को न केवल सुन्दरता ही प्रदान की थी, बल्कि इनके चेहरे-मोहरे और कारीगरी को ऐसी विशिष्टता से समन्वित कर दिया था कि मनोहरता, लावण्य और कला-परिपूर्णता में इन मूर्त्तियों से बढ़कर कोई चाँदी या मोम की मूर्त्तियाँ नहीं गढ़ी जा सकती थीं। ग्रोस (१७५० ई०) कार्निसों के इर्द-गिर्द खिंचे इन चित्रों में से कुछ-एक की रंगकारी की खूबसूरती और ताजगी से बहुत ही प्रभावित हुआ था। अर्सकिन (१८१३ ई०) ने भी मुख्य द्वार की छत में आकृतियों से युक्त अनेक समकेन्द्र-वृत्तों के होने का उल्लेख किया है। इनमें से कुछ चित्रों के अवशेष सन् १८३५ ई० तक तो दृश्य थे ही—मूलतः वे लाल रहे होंगे, लेकिन तब वे जगह-जगह फीके पड़कर जमुनिया रंग के हो गए थे। इस रंगीन लेप के धब्बे पश्चिमी बरसाती (पोर्टिको) की, और पूर्वीय खण्डवाले मातृका-मन्दिर की, जिसका उल्लेख आगे किया गया है, छत में आज भी देखे जा सकते हैं। प्राचीन काल में, जब ये लयण-मन्दिर ऐसे अलंकरणों से देदीप्यमान थे, तब इनकी शोभा कैसी रही होगी, इसका सही अनुमान तो वही लगा सकते हैं, जो अजन्ता के चित्रों की विशिष्टता से सुपरिचित हैं।

पूर्वी खण्ड

प्रथम लयण के मुख्य (मध्य) खण्ड के मध्य-मण्डप का पूर्वी छोर खुला हुआ है और उसके दोनों सिरों पर अर्ध-स्तम्भ और बीच में दो स्तम्भ हैं। इस खुले हुए भाग से भीतर मण्डप में प्रकाश जाता है, यह हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। इस खुले भाग के सामने एक दस फुट दस इंच चौड़ी सीढ़ी है, जो ५५ फुट लम्बे और पचास फुट चौड़े आँगन में उतरती है। यह आँगन ही इस लयण का पूर्वी खण्ड है।

इस आँगन का उत्तरी भाग एकदम खुला हुआ था, किन्तु, अब उस ओर मिट्टी और मलबे से एक हलका-सा अवरोध बन गया है। आँगन के पूर्व ओर सादा दीवार है,

जो पर्वत के लयण बनाने के निमित्त काटने से बनी है। पश्चिम की ओर तो लयण का मध्य खण्ड है ही। इस प्रकार इस आँगन के दक्षिण की ओर ही लयण-वास्तु का संयोजन किया जा सका है। आँगन के मध्य में दो-तीन इंच ऊँचा एक साढ़े सोलह फुट व्यास का गोल चबूतरा है। कदाचित् यह चबूतरा नन्दिपीठ रहा होगा, पर नन्दि का अब पता नहीं है। यह नन्दि मध्य-खण्ड के भीतर स्थित लिंग से सम्बन्धित था अथवा इस आँगन के दक्षिण बने मन्दिर से, जिसका परिचय हम आगे दे रहे हैं, निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। चबूतरे की अवस्थिति दोनों ही के ठीक सामने है। इस कारण वह दोनों के ही नन्दि का समान रूप से पीठ हो सकता है।

आँगन के दक्षिण दो फुट चार इंच ऊँचा एक पतला चबूतरा है। इसपर जाने के लिए चन्द्रशिलायुक्त एक छोटी-सी सीढ़ी है। इस चबूतरे के ऊपर साढ़े अठारह फुट की ऊँचाई पर एक छज्जा था, जो अब गिर गया है। अवशिष्ट चिह्नों से अनुमान होता है कि इस छज्जे के दोनों सिरों पर अर्ध-स्तम्भ तथा बीच में दो स्तम्भ रहे होंगे। इस चबूतरे से साढ़े तीन फुट की ऊँचाई पर एक अर्ध-मण्डप अथवा बरामदा है। इसपर जाने के लिए चबूतरे के ऊपर एक दूसरी सीढ़ी बनी हुई है। (फलक ३१)

इस अर्ध-मण्डप अथवा बरामदे का सामना आँगन की चौड़ाई के बराबर पचास फुट है और उसके दोनों सिरों पर अर्ध-स्तम्भ तथा बीच में दो स्तम्भ हैं। अर्ध-स्तम्भों के आगे अर्थात् पूर्व और पश्चिम की ओर कुछ दूर तक पर्वत को काटकर बरामदे को लम्बा किया गया है। इस प्रकार यह बरामदा ५८ फुट ४ इंच लम्बा और २४ फुट २ इंच चौड़ा है। इस बरामदे के सामने (दक्षिण ओर) बीच में १३ फुट १० इंच चौड़ा और १६ फुट १ इंच लम्बा (उत्तर-दक्षिण) एक गर्भगृह है। गर्भगृह में जाने के लिए बाहर एक पंच-पदीय सीढ़ी है, जिसके दोनों ओर सिंह बैठे हैं। द्वार पर सुन्दर अलंकरण किया गया था, जिसका कुछ भाग ही अब बच रहा है। (फलक ३२) गर्भगृह के भीतर ९ फुट ५ इंच वर्गाकार चबूतरे पर २ फुट ५ इंच व्यास का एक लिंग प्रतिष्ठित है (फलक ३३), जो उसी पत्थर का बना है, जिस पत्थर का लिंग मध्यखण्ड के गर्भगृह में है। चबूतरे में एक सिंह-मुख जल-प्रणाली है।

गर्भगृह के बाहर उसके तीन ओर पर्वत काटकर अलग से प्रदक्षिणा-पथ बनाया गया है, जो कहीं ८ फुट ४ इंच और कहीं ८ फुट ९ इंच चौड़ा है। इस प्रदक्षिणा-पथ के अगल-बगल मण्डप की दक्षिणी दीवार के दोनों छोर पर भीमकाय द्वारपाल मूर्त्तित हैं। पूर्व की ओर का द्वारपाल तो क्षत-विक्षत है (फलक ३३), पर पश्चिम का द्वारपाल बहुत-कुछ अपने रूप में सुरक्षित है। यह द्वारपाल त्रिनेत्रयुक्त, चतुर्भुजी और जटा-जूटधारी है। इसके बायें कान में सर्प-कुण्डल है। नीचे के बायें हाथ की उसकी कुहनी कुब्जक पर टिकी हुई है। ऊपर दोनों ओर गन्धर्वों का अंकन है। (फलक ३४)

बरामदे के पूर्वी और पश्चिमी छोरों पर भीतर की ओर आयताकार पार्श्व-अर्ध-मण्डप हैं, जो बरामदे से कुछ ऊँचाई पर बने हैं और उनके भीतर जाने के लिए बाहर सीढ़ियाँ बनी हैं। इन अर्ध-मण्डपों का सामना दो अर्ध-स्तम्भों और दो स्तम्भों से बना है।

ये स्तम्भ आकार में प्रायः अन्य स्तम्भों की तरह ही हैं; अन्तर इतना ही है कि ये कटावदार नहीं हैं। इनकी ऊँचाई लगभग साढ़े दस फुट है। स्तम्भों के ऊपर जो बड़ेरीनुमा पट्टी है, उसके ऊपर वर्गाकार सादा कटाव है। स्तम्भों के ऊपर-नीचे छेद हैं, जिनसे जान पड़ता है कि उनके साथ बन्द करने के लिए बाढ़ (रेलिंग)-युक्त द्वार लगे रहे होंगे।

पश्चिम की ओर के पार्श्व-अर्ध-मण्डप की दक्षिणी दीवार पर गणेश की एक विशाल मूर्त्ति है, जिसके बायें घुटने पर एक मूषक बैठा है। उनके दायें-बायें एक-एक आकृतियाँ और ऊपर दोनों ओर गन्धर्व-दम्पती हैं। उसकी उत्तरी दीवार पर सम्भवतः त्रिशूलधारी शिव का मूर्त्तन है। उनका बायाँ हाथ एक गण के सिर पर है। उनकी दाहिनी ओर कमल-स्थित ब्रह्मा और बाईं ओर गरुडारूढ़ विष्णु हैं। उनके अगल-बगल कुछ अन्य नारी-पुरुष अंकित हैं। सामने की (पश्चिमी) दीवार पर दस आकृतियों की एक पाँत है। इस पाँत के उत्तरी सिरे पर गणेश, उनकी बगल में एक अन्य पुरुष-आकृति है, जो कदाचित् वीरभद्र की रही होगी, किन्तु अब नष्ट हो गई है। शेष आठ आकृतियाँ अष्ट-मातृकाओं—ब्रह्माणी, माहेश्वरी, वैष्णवी, कौमारी, ऐन्द्री, वाराही, नारसिंही और चामुण्डा की हैं। इनमें से कुछ की गोद में और कुछ की बगल में, बालक हैं और उनके पार्श्व में उनके प्रतीक-स्तम्भ हैं। इन आकृतियों के ऊपर अलंकरणों की तीन पट्टियाँ हैं।

पूर्वी ओर का पार्श्व-अर्ध-मण्डप २७ फुट ७ इंच लम्बा और ११ फुट ७ इंच चौड़ा है। उसका फर्श तल से कुछ नीचा है। यह भीतर से सादा है। इसके भीतर ऊपर पर्वत से पानी रिसता रहता है, जिसके कारण यह गर्मियों में भी पानी से भरा रहता है। मूलतः इस कमरे में इसी तरह पानी रिसता और जमा होता रहता था, यह तो ज्ञात नहीं, किन्तु जनसाधारण में प्रचलित अनुश्रुति है कि महाशिवरात्रि के दिन छत से गंगा का पानी गिरता है। उस दिन यहाँ एक मेला लगता है और आसपास के लोग इस पवित्र जल को ग्रहण करने के लिए एकत्र होते हैं।

पश्चिमी खण्ड

पूर्वी खण्ड की तरह ही लयण के मध्यखण्ड के पश्चिम एक खुला आँगन है, जो मुख्य मण्डप के पश्चिमी खुले भाग के सामने पड़ता है। इस आँगन के बनाने का मुख्य प्रयोजन पश्चिम की ओर से मण्डप के भीतरी भाग में प्रकाश पहुँचाना ही जान पड़ता है। मध्यखण्ड से इस खण्ड में आने के लिए सीढ़ी बनी है, जो मण्डप-स्थित गर्भगृह के ठीक पीछे पड़ती है। इस सीढ़ी के ठीक सामने एक पतला गोल चबूतरा (नन्दि-पीठ) है। यह आँगन भी पूर्वी आँगन की तरह ही उत्तर की ओर खुला है। इसके दक्षिणी भाग में, जहाँ पूर्वी खण्ड में अर्ध-मण्डप-युक्त शिवमन्दिर है, एक सवा छियासठ फुट लम्बा, साढ़े पचपन फुट चौड़ा और १७ फुट गहरा कुण्ड है। (फलक ३५) इस कुण्ड का सामना दो स्तम्भों और दो अर्ध-स्तम्भों का बना हुआ था, जो अब गिर गया है।

आँगन के पश्चिम, पूर्वी खण्ड के दक्षिणी भाग में बने बरामदे-सहित जो शिव-मन्दिर है, उसी तरह का शिव-मन्दिर है। (फलक ३६) इसमें सामने का बरामदा २७ फुट लम्बा

और १७ फुट ७ इंच चौड़ा है और उसके सामने के भाग में दोनों सिरों पर दो अर्ध-स्तम्भ हैं। बरामदे के उत्तरी सिरे वाली दीवार पर लकुलीश शिव का और दक्षिणी दीवार पर नटराज शिव का मूर्त्तन हुआ है। बरामदे के सामने, अर्थात् पश्चिमी भाग में १० फुट ७ इंच लम्बा और ९ फुट ७ इंच चौड़ा गर्भगृह है, जिसके बीच में अनगढ़ चबूतरे पर शिवलिंग स्थापित है। (फलक ३७) द्वार के दोनों ओर द्वारपालों का मूर्त्तन हुआ है, जिनके नीचे दो कुब्जक और ऊपर दो गन्धर्व हैं। ये मूर्त्तन मुख्य मण्डप के मूर्त्तनों की तुलना में काफी घटिया हैं।

अन्य लयण

प्रथम लयण से, जिसकी अभी हमने विस्तृत चर्चा की है, लगभग एक फर्लांग पूर्व दूसरा लयण है, जो कदाचित् पूरा नहीं बन पाया। इसमें सामने चार स्तम्भों की एक बरसाती है और उसके पीछे दो अधबनी कोठरियाँ हैं।

इस दूसरे लयण से कुछ आगे पूर्व-उत्तर-पूर्व की ओर उसी धरातल पर तीसरा लयण है, जिसकी लम्बाई एक सौ साढ़े नौ फुट है। मलबों से इसका द्वार अवरुद्ध हो गया था, जिसे पुरातत्त्व-विभाग ने साफ कराया है। पानी रिसने के कारण यह लयण अत्यन्त क्षतिग्रस्त अवस्था में है। इसका सामना चार स्तम्भों और दो अर्ध-स्तम्भों से बना था, जो अब नष्ट हो गया है। इन स्तम्भों के पीछे ७९ फुट लम्बा और ३२ फुट चौड़ा मण्डप है। इस मण्डप के उत्तरी सिरे पर चार फुट की ऊँचाई पर ३९ फुट लम्बा और २२ फुट चौड़ा एक कमरा है, जिसमें चार अष्टकोण स्तम्भ और दो अर्ध-स्तम्भ हैं। इस कमरे से लगा पौने सोलह फुट लम्बा और साढ़े सोलह फुट चौड़ा एक दूसरा कमरा है। तदनन्तर गर्भगृह है, जिसके द्वार के दोनों ओर द्वारपाल अंकित हैं। इस कमरे की नाप चारों दिशाओं में एक-सी नहीं है। इसलिए मोटे तौर पर इसे पौने इक्कीस और साढ़े बाईस फुट के भीतर वर्गाकार कहा जा सकता है। दक्षिणी सिरे पर एक चौथा कमरा है, जो उत्तरी सिरे के कमरे के समान ही है। वह भीतर से सादा है, किन्तु द्वार अलंकृत है।

आगे बढ़ने पर प्रथम लयण के पीछे दक्षिण की ओर चतुर्थ लयण है। यह भी काफी क्षतिग्रस्त है। इसका सामने का बरामदा साढ़े उनचास फुट लम्बा है। इसके दोनों सिरों पर दो स्तम्भों और दो अर्ध-स्तम्भों पर बने एक-एक पार्श्वमण्डप हैं। उत्तरी सिरे का पार्श्व-मण्डप २३ फुट ९ इंच लम्बा और १७ फुट ४ इंच चौड़ा है। इसके पीछे १४ फुट लम्बी और १६ फुट ४ इंच चौड़ी कोठरी है। दक्षिण का पार्श्व-मण्डप साढ़े इक्कीस फुट लम्बा और १७ फुट ७ इंच चौड़ा है और उसके पीछे भी एक कोठरी है, जो १६ फुट ७ इंच लम्बी और १५ फुट १० इंच चौड़ी है। मण्डप के सामने (पश्चिम) बीच में गर्भगृह और उसके अगल-बगल दो छोटे कमरे हैं। गर्भगृह के द्वार के, जो पौने पाँच फुट चौड़ा है, दोनों ओर द्वारपाल अंकित हैं। भीतर से गर्भगृह १९ फुट १० इंच लम्बा और १८ फुट

१० इंच चौड़ा है। भीतर लगभग ७ फुट वर्गाकार चबूतरा है, जिसपर लिंग स्थापित है। बगल के कमरे १५ फुट वर्गाकार हैं।

आगे पहाड़ी से कुछ नीचे उतरकर पाँचवाँ लयण है। मलबे से उसका द्वार एकदम बन्द है। उसके केवल चौपहल स्तम्भ नजर आते हैं।

घाटी में उतरकर दूसरी ओर की (पूर्वी) पहाड़ी पर चढ़ने पर प्रथम लयण की ऊँचाई से १०० फुट और ऊँचे पर छठा लयण स्थित है। इसका मण्डप पश्चिम-उत्तर-पश्चिम मुख है। यह साढ़े छिहत्तर फुट लम्बा और उत्तर की ओर २७ फुट ४ इंच तथा दक्षिण की ओर २५ फुट ४ इंच चौड़ा है। इस मण्डप में लगभग साढ़े आठ फुट ऊँचाई और दो फुट वर्ग के चार स्तम्भ और अर्ध-स्तम्भ हैं। सामने बीच में गर्भगृह और अगल-बगल दो कमरे हैं। गर्भगृह का द्वार लगभग ८ फुट ऊँचा और ४ फुट चौड़ा है। उसमें जाने के लिए चन्द्र-शिलायुक्त सीढ़ी है, जिसके दोनों और सिंह बने हुए हैं। गर्भगृह भीतर वर्गाकार, लगभग १५ फुट ७ इंच है। इसकी पिछली दीवार से लगा पहले ७ फुट ढाई इंच लम्बा और आठ फुट साढ़े दस इंच चौड़ा चबूतरा है और उसके ऊपर ३ फुट ४ इंच ऊँचा, ४ फुट ५ इंच लम्बा और ३ फुट ५ इंच चौड़ा दूसरा चबूतरा है। इसमें उत्तर की ओर एक जल-प्रणाली है और बीच में १७ इंच लम्बा और ६ इंच चौड़ा छेद है, जिसमें लिंग प्रतिष्ठित रहा होगा। जिन दिनों यह द्वीप पुर्त्तगालियों के कब्जे में था, इस लयण का प्रयोग गिरजाघर के रूप में होता रहा।

इस लयण से लगभग १५० गज उत्तर हटकर सातवाँ लयण है, जो बहुत छोटा है। उसमें तीन कमरे जान पड़ते हैं। सम्भवतः वह लयण के उत्खनन का आरम्भिक रूप-मात्र है।

इसके आगे उत्तर-पूर्व की ओर चोटी के नीचे पर्वत काटकर बनाये गये ढाई फुट वर्गाकार तीन कुण्ड हैं। इन कुण्डों के निकट ही ईंटों के बने कुछ छेकन देखने में आते हैं। इन कुण्डों के सदृश कुण्ड अनेक बौद्ध-विहारों के निकट देखने में आये हैं। इस आधार पर लोगों का अनुमान है कि ईंटों के छेकन किसी बौद्ध-विहार के होंगे। पर्वत की चोटी पर भी किसी वास्तु के अवशेष मिलते हैं। इस वास्तु का मूल रूप क्या था, कहा नहीं जा सकता। कुछ लोग इसे बौद्ध-स्तूप होने का अनुमान करते हैं। इस धारणा की जाँच करने की चेष्टा इसके बीच में ऊपर से नीचे तक खुदाई कराकर हेनरी कजेन्स ने सन् १८८२ ई० में की थी, पर वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके।

अन्त में उस अश्व का उल्लेख कर देना उचित होगा, जिसके शिलाखण्ड काटकर बनाये जाने और उस जगह होने की बात कही जाती है, जहाँ दोनों पर्वत एकाकार होते हैं। उसे सन् १६८५ ई० में डॉ० फ्रायर ने देखा था। उसकी विस्तृत चर्चा सन् १६९० ई० में औविंगटन ने की थी। उनका कहना था कि उसका मूर्त्तन इतना सजीव था कि दूर से उसे कोई नहीं कह सकता था कि वह जिन्दा नहीं है। किन्तु, सन् १७१२ ई० में पाइक ने उसका जो

रेखाचित्र प्रकाशित किया था, उससे औविंगटन के इस कथन की पुष्टि नहीं होती। उसमें वह एक अकड़े हुए जेबरा-सरीखा जान पड़ता है। उससे यह भी प्रकट होता है कि उसके केवल ऊपरी भाग का ही मूर्त्तन हुआ था, नीचे का शिलाखण्ड अनगढ़ ही था। सन् १७२० ई० में उसे हैमिल्टन ने देखा। वे भी उसे हाथी के समान सुघटित नहीं बताते। जो भी हो, अब इस घोड़े का कहीं पता नहीं है। अनुमान है कि अठारवीं शती के मध्य में किसी समय वह गायब हो गया।

मूर्त्ति-विवेचन

पहले कहा जा चुका है, प्रथम लयण के मध्य खण्ड के मूल भित्ति-चित्र और अन्य कला-कृतियाँ अजन्ता के समकक्ष थीं। पुर्त्तगाली अभिलेखों से भी इसकी सम्पुष्टि होती है। पर, भित्ति-चित्रकारी का तो अब लवलेश ही रह गया है। यदि पुर्त्तगालियों द्वारा यहाँ का अपार कला-वैभव क्षतिग्रस्त न किया गया होता, तो इन लयणों की ऐसी श्रीहीनता नहीं होती। मुख्य लयण के मुख्य मण्डप में अब जो कलाकृतियाँ अवशिष्ट हैं, वे निम्नांकित मूर्त्तियाँ मात्र हैं :

१. नटराज,	४. गंगावतरण,	७. रावण-दर्प-दलन-मूर्त्ति,
२. अन्धकासुर-वधमूर्त्ति,	५. त्रिमूर्त्ति,	८. योगेश्वर (लकुलीश),
३. शिव-पार्वती-विवाह,	६. अर्धनारीश्वर,	९. मानिनी पार्वती।

इस लयण में शिव के कुल इतने ही रूप क्यों प्रदर्शित हैं, इसका कोई सन्तोषप्रद समाधान नहीं मिलता। पुष्पदन्त ने शिव के आठ नाम लेकर उनका अभिवादन किया है। उन्हीं के शब्दों में :—

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्।
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥[१]

—हे देवाधिदेव ! भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महान्, भीम एवं ईशान—ये जो आपके आठ नाम हैं, इनमें से प्रत्येक में वेद भी भ्रमण करता है। ऐसे आपके हर तेजोमय रूप को मैं प्रणाम करता हूँ। इतना ही नहीं, पुष्पदन्त उनके तेजोमय रूप से कुछ इतना अभिभूत हो उठते हैं कि विराट् परब्रह्म के रूप में उन्हें प्रणाम करने लग जाते हैं :

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥[२]

---

१. देखें शिवमहिम्नःस्तोत्र, श्लोक, संख्या २८।

२. तत्रैव, श्लोक-संख्या २५।

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोत्पत्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥[1]

—हे अभक्तों के हितनाशक ! हे स्मरहर ! हे त्रिलोचन ! निकट से भी निकट रहनेवाले, आपको प्रणाम। छोटे-से-छोटे रूपवाले आपको प्रणाम है, और बड़े से भी बड़े रूपवाले, आपको प्रणाम। पुनः प्राचीन-से-प्राचीन और नवीन-से-नवीन, आपको प्रणाम है। सारी सृष्टि में आप ही ब्रह्मरूप में व्याप्त हैं। इस विचार से, सर्वरूपधारी, आपको प्रणाम, और शर्वनामधारी भी, आपको प्रणाम है। हे त्रैगुण्यमूर्त्ते, संसार की उत्पत्ति के समय पूर्ण रजोगुण धारण करनेवाले भवरूपी आपको बारम्बार प्रणाम है। संसार के प्रलय के समय पूर्ण तमोगुण धारण करनेवाले हररूप आपको बार-बार प्रणाम है। संसार की सत्त्व-प्रधान उत्पत्ति के समय सबको सुख देनेवाले मृड रूप आपको बार-बार प्रणाम है। तीनों गुणों के परे ज्योतिर्मय स्थान में वा मुक्तिमार्ग में कल्याणमय शिव-रूप आपको बारम्बार प्रणाम है।

प्रतीक-रूप में शिवलिंगों की ही बात ली जाय, तो लिंगपुराण में असंख्य शिव-लिंगों का उल्लेख हुआ है।

सर्वेषां शिवलिङ्गानां मुने संख्या न विद्यते ।
सर्वलिङ्गमयी भूमिः सर्वलिङ्गमयं जगत् ।
पृथिव्यां यानि लिङ्गानि तेषां संख्या न विद्यते ॥

—हे मुनि, कुल शिवलिंगों की संख्या आँकी नहीं जा सकती। सारी भूमि ही लिंगमयी है, सारा जगत् ही लिंगमय है। पृथ्वी पर जितने शिवलिंग हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती।

ज्योतिर्लिंगों की ही गणना की जाय तो उनकी संख्या १२ है। वैसे तो, विष्णुसहस्र-नाम की तरह शिव के भी सहस्र नाम हैं। सम्भव है, शिव के सौम्य स्वरूपों के अन्तर्गत ही एलिफैण्टा के लयण में उपर्युक्त ९ प्रतिमाएँ उत्कीर्ण की गई हों।

इस लयण की मण्डप-रचना का जो भू-विन्यास संलग्न है, उसमें उपर्युक्त मूर्त्तियों की स्थिति दर्शायी गई है। आगे, प्रत्येक मूर्त्ति का विशद विवेचन किया जा रहा है।

नटराज

इस लयण (फलक १८, १९) या शिव-मन्दिर में सदाशिव की विभिन्न मुद्राओं की ९ मूर्त्तियों में से पहली मूर्त्ति नृत्यरत नटराज की है। शिव सर्वव्यापी परब्रह्म हैं; अतः

१. शिवमहिम्नःस्तोत्र, श्लोक-संख्या ३०।

इनके रूप और गुण भी अनन्त हैं। उनका यह नटराज-रूप इस तथ्य का द्योतक है कि नृत्य ही सृष्टिविधान है और इसकी निवृत्ति प्रलय। शैवों का विश्वास है कि सृष्टि के संरक्षण के लिए शंकर नित्य नृत्य किया करते हैं। उस समय सभी देव, दानव, यक्ष, रक्ष आदि इनकी सेवा में उपस्थित रहते हैं, और मात्र नटराज-रूपी शंकर की पूजा से सबकी पूजा हो जाती है।[1] 'नटराजसहस्रनाम' में दिये गये एक वर्णन के अनुसार देव-दैत्यादि के पूज्य पुरहर प्रदोषकाल में जब कैलास पर नृत्य करने लगते हैं, तब स्वर्ग की सुन्दरियों के साथ शैलजा बड़े आनन्द से नृत्य को देखती हैं। ब्रह्मा ताल देते हैं, इन्द्र वेणु बजाते हैं और चक्रपाणि धित्तं धित्तां आदि ताल देकर मृदंग बजाते हैं।[2] हमारा सारा शब्दशास्त्र उन चौदह माहेश्वर सूत्रों पर अवलम्बित है, जो एक दिन नृत्य के अवसान पर नटराज के चौदह बार डमरू बजाने से निस्सृत हुए थे।[3] डॉ० जनार्दन मिश्र ने अपनी 'भारतीय प्रतीक-विद्या' नामक पुस्तक में नृत्त, नृत्य और नाट्य में भेद स्पष्ट किये हैं। स्वाभाविक उल्लास से अंगविक्षेप का नाम नृत्त है। किसी भाव को प्रकट करने के लिए अंगहार का नाम नृत्य है और किसी निश्चित घटना या विषय को प्रकट करने में अंग-चालन का नाम नाट्य है। नटराज शिव नृत्तमय-मात्र ही नहीं, नृत्यमय भी हैं और नाट्य तथा संगीत के आदि प्रवर्त्तक भी ।

स्वभावतः यह जिज्ञासा उठती है कि भगवान् शिव के नृत्य को ताण्डव क्यों कहा जाता है। कहते हैं, यह नाम शिव के शिष्य तण्डु के नाम पर पड़ा है। शिव ने जो नृत्य-परम्परा प्रवर्त्तित की, उसे सर्वप्रथम उन्होंने अपने शिष्य तण्डु को सिखाया। साधारणतः जब मनुष्य क्रोध में आकर जोर-शोर मचाने लगता है तब कहा जाता है कि वह ताण्डव कर रहा है। यह एक रभस-नृत्य है। इसके पदाघात काफी शक्तिशाली होते हैं। पुष्पदन्त ने इसका बड़ा ही प्रभावोत्पादक वर्णन किया है ---

> "मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदम्
> पदं विष्णोर्भ्राम्यद् भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।

---

१. "कैलासशैलभुवने त्रिजगज्जनित्रीं
गौरीं निवेश्य कनकाचितरत्नपीठे।
नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ
देवाः प्रदोषसमयेऽनुभजन्ति सर्वे॥"

२. "कैलासे च प्रदोषे नटति पुरहरे देवदैत्याभिवन्द्ये
पश्यन्त्यां शैलपुत्र्यां नटनमतिमुदा स्वर्वधूसंयुतायाम्।
ब्रह्मा तालं च वेणुं कलयति मघवा मर्दलं चक्रपाणि--
धित्तां धित्तां धिमित्तां धिमि धिमि धिमितां धिंधिमी धिंधिमीति॥"

३. "नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्त्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥"

मुहुर्द्यौर्दौःस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता।" [१]

—"हे महेश्वर ! संसार की रक्षा के लिए जब कभी आप ताण्डव नृत्य करते हैं तब आपके पाँवों की धमक से स्वयं वसुन्धरा सन्देह में पड़ जाती है कि उन्हें धँसाकर आप कहीं पाताल तो नहीं भेज देंगे। नृत्य के क्रम में जब आप अपनी भुजाओं को स्फालित करते हैं तब आकाश के ग्रह-नक्षत्र भी धक्का खा जाते हैं और स्वर्ग के प्रान्तर भी आपकी छटकती हुई जटाओं के झटके से दुर्दशाग्रस्त हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि नटराज-रूप में आपकी प्रभुता सचमुच बड़ी कड़ी है।"

उनकी प्रभुता सचमुच बड़ो विराट् है। इस विराट् रूप का और भी विशद वर्णन निम्नांकित श्लोक में किया गया है —

"वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः॥" [२]

——"हे विभो, नक्षत्र-समूहों से जिस स्वर्गंगा के फेनों की शोभा उद्भासित थी और जो सारे आकाश में एक छोर से दूसरे छोर तक फैली हुई थी, गंगावतरण के बाद, उस स्वर्गंगा का सारा जल-प्रवाह आपके मस्तक पर एक बूँद-सा हल्का देखा गया। बाद में, जब वह तुम्हारे जटाजूट से निःसृत हुई तब उसने इस जम्बू द्वीप के आकारवाले संसार को समुद्र के सदृश घेर लिया। मात्र इसीसे महामहिमाशाली और दिव्यगुणयुक्त तुम्हारे उस शरीर का अनुमान किया जा सकता है।"

कुमारस्वामी के अनुसार, जिस आर्येतर देवता में देव और दैत्य, दोनों के अंश जुड़े थे, उसी से ताण्डव-नृत्य की उत्पत्ति हुई। शिव के ताण्डव करते ही वहाँ देवता और दैत्य इकट्ठे हो जाते हैं और उस नृत्य में साथ देते हैं। ताण्डव में अभिनय नहीं होता है। उसमें केवल हस्त-पाद की विभिन्न मुद्राएँ होती हैं। शक्ति एवं तल्लीनता उनके विशिष्ट गुण हैं तथा ताल और लय उनके प्राण। आश्चर्य नहीं कि युद्ध-नृत्य भी ताण्डव-शैली से ही उत्पन्न हुआ हो और हमारा आज का कथाकली-नृत्य भी ताण्डव का ही एक रूप हो।

शिव तो योगेश्वर ठहरे। पर, मात्र योग से ही उनकी अर्द्धांगिनी को सन्तुष्टि कैसे हो ! अतः एक ऐसी भी धारणा है कि शिव पार्वती को प्रसन्न करने के लिए यदा-कदा नृत्य करते हैं। इस नृत्य का समय साधारणतः प्रदोषकाल ही होता है। 'प्रदोषस्तोत्रम्' में एतद्विषयक एक वर्णन में कहा गया है —

---

१. शिवमहिम्नःस्तोत्र, श्लोक १६।
२. तत्रैव, श्लोक १७।

कैलासशैलभुवने त्रिजगज्जनित्रीं
गौरीं निवेश्य कनकाञ्चितरत्नपीठे ।
नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ
देवाः प्रदोषसमयेऽनुभजन्ति सर्वे ॥

अर्थात् कैलास-भवन में शिव नृत्य करने के लिए उद्यत होते हैं, इस हेतु वे जगन्माता पार्वती को कनकमय रत्नपीठ पर बिठा देते हैं। पार्वती ही शिव-नृत्य-दर्शक होती हैं। प्रदोष के समय नृत्य प्रारम्भ होते ही स्वर्ग के सभी देवगण दौड़े आ पहुँचते हैं और नृत्य में उनका साथ देते हैं।

वाग्देवी धृतवल्लकी शतमखो वेणुं दधत्पद्मज-
स्तालोन्निद्रकरो रमा भगवती गेयप्रयोगान्विता ।
विष्णुः सान्द्रमृदङ्गवादनपटुर्देवाः समन्तात्स्थिताः
सेवन्ते तमनुप्रदोषसमये देवं मृडानीपतिम् ॥

अर्थात् वाग्देवी सरस्वती आती हैं और वीणा उठा लेती हैं। इन्द्र मुरली बजाने लगते हैं। ब्रह्मदेव हाथों से लोगों की नींद खोलनेवाला ताल देने लगते हैं। लक्ष्मी गीत गाने लगती हैं। विष्णु मधुरगम्भीर मृदंग-वादन में पटुता दिखाने लगते हैं। नृत्य को वाद्य का साथ मिल जाता है, गीत को ताल का। बस, और चाहिए ही क्या ? सम्पूर्ण देवमंडली नर्त्तक शिव को घेर लेती है। अस्तु,

सामान्यतः नटराज की दो प्रकार की मूर्त्तियाँ पाई जाती हैं—प्रभामण्डल-रहित और प्रभामण्डल-सहित। इस लयण की मूर्त्ति पहली कोटि को है। प्रभामण्डल-रहित इस मूर्त्ति में शिवरूपी ब्रह्म के सभी प्रतीक वर्त्तमान हैं। प्रभु के आनन्दमय वपु से ही क्रिया का प्रवर्त्तन होता है, जिससे सारी सृष्टि का उद्भव और उसमें परिवर्त्तन होता रहता है। उस महा-आनन्द में प्रभु आप से-आप हिलते-डुलते, थिरकते अर्थात् नृत्त में निरत रहते हैं, जो विश्वव्यापी ताल, लय और संगीत बन जाता है। नटराज के मूर्त्तन में मस्तक पर चन्द्रकला, जो अमृतमय आनन्द का प्रतीक है, होती है और जटाएँ कभी खुली रहती हैं। कभी मस्तक पर जटा-मुकुट, कभी करण्ड-मुकुट और कभी किरीट-मुकुट होता है। सर्प और कटि-वस्त्र के रूप में दिक्काल सेवा के लिए उपस्थित रहते हैं। एक हाथ में वाक् या शब्दब्रह्म डमरू होता है, जिससे सृष्टि का प्रवर्त्तन होता है और जो रजोगुण का प्रतीक है तथा दूसरे हाथ में अग्नि होती है, जिससे ज्वाला की लपटें निकल रही होती हैं। यह संहरण-शक्ति का चिह्न और तमोगुण का प्रतीक है। एक हाथ अभय-मुद्रा में ऊपर उठा हुआ रहता है, जो जीव-मात्र को अभय-दान देता हुआ मानों कहता होता है 'मा भैषीः'; डरो मत; मेरी कृपा तुम्हारे साथ है, मैं तुम्हारे साथ हूँ। प्रभु का बायाँ पैर उठा हुआ होता है और वरद-हस्त इसकी ओर संकेत करता होता है, मानों कहता होता है कि इसकी शरण में आओ, यही तुम्हारा त्राता है। यह स्थिति का प्रतीक सत्त्वगुण है।[1] दुर्भाग्यवश, यहाँ नटराज के ये सारे अलंकरण नष्ट हो गये हैं।

१. डॉ० जनार्दन मिश्र द्वारा रचित 'भारतीय प्रतीक-विद्या' पृ० ८५-८६।

यह नटराज-मूर्त्ति लगभग पौने ग्यारह फुट ऊँची है, पर उसका अधिकांश अंग-भंग हो गया है (फलक १८)। डॉ० हण्टर के अनुसार सन् १८७३ ई० में इसका प्रथम दक्षिण और तृतीय वाम हाथ वर्त्तमान थे। अब केवल बाईं ओर का चौथा हाथ बच गया है। यह मूर्त्ति स्पष्टतः अष्टभुजी थी। प्रथम दक्षिण बाँह शायद पूरी शरीरयष्टि के आर-पार जाकर दाहिने भाग में कमर से लगती थी और द्वितीय शरीर से बाहर निकली थी। सामने की बाँह मुड़कर शायद वक्षस्थल के समक्ष आती थी। पर यह तो अभी केहुनी के नीचे से टूटी है। सामने की तीसरी बाँह तो टूटकर बिलकुल गायब है। बाईं ओर की पहली दो बाँहें शायद नीचे लटकती थीं, पर वे भी प्रायः कमर के निकट से टूटकर अलग हो गई हैं। तीसरी भुजा ऊपर उठी हुई है, पर उसी तरह टूटी हुई है। चौथी कन्धे से ऊपर उठी हुई है। दाहिनी जाँघ कुछ बाहर को निकली है, पर घुटने के ऊपर से टूटी हुई है, और बायाँ पाँव तो पूरा गायब है। कमर की करधनी और बाहु पर का अलंकार अब भी काफी स्पष्ट और चित्ताकर्षक है। शिव की बाईं ओर पौने सात फुट ऊँची शिव की मूर्त्ति है। उनका चेहरा, वक्षस्थल और हाथ क्षतिग्रस्त हैं। हाँ, उनके कर्णफूल, करधनी और गले में चकती-युक्त हार और बाँहों के अलंकरण की कलात्मकता अनोखी है। नटराज की दाहिनी ओर गणेश की मूर्त्ति है। उनके कुछ नीचे पार्षद भृंगी की मूर्त्ति है। इससे परे दक्षिण में जो पौरुष-प्रतीक मूर्त्ति दीखती है वह, स्पष्टतः कुमार कार्त्तिकेय की है। इस टोली के ऊपर छत में हंसारूढ चतुरानन की मूर्त्ति है। बाईं ओर का उनका भी हाथ और दाहिनी ओर के तो सामने और पीछेवाले दोनों हाथ टूटे हुए हैं। ब्रह्मा और शिव के शीर्ष के बीच एक देव और दो देवियों की मूर्त्तियाँ दीखती हैं, और इसी तरह की एक टोली सामने की ओर देखने को मिलती है। ब्रह्मा के पीछे दो ऋषि-मूर्त्तियाँ हैं, और पार्वती के दाहिने कन्धे के ऊपर गरुडवाहन विष्णु की मूर्त्ति है। इन सबके सिर गायब हैं। विष्णु के एक हाथ में गदा और दूसरे में शंख अब भी हैं। पार्वती के बायें कंधे के ऊपर ऐरावत पर चढ़े देवराज इन्द्र दिखाई देते हैं। पुष्पदन्त-विरचित 'शिवमहिम्नःस्तोत्र' में आये वर्णन के अनुसार नटराज के पदाघात से पृथ्वी सहसा संकट में पड़ जाती है। परिघ की तरह (परिपुष्ट) भुजाओं के घूमने से, जिस आकाश में ग्रहगण घूमते रहते हैं, वह भी संकट में पड़ जाता है। बारम्बार तटों पर जटाओं के आघात लगने से द्युलोक की भी दुरवस्था हो जाती है। नटराज जगत् की रक्षा के लिए नृत्य करते हैं। नटराज की प्रतिकूल क्रिया भी वैभव बन जाती है।[1]

---

१. मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदम्
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौःस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता॥
—शिवमहिम्नःस्तोत्र, श्लोक १६।

अन्धकरिपु-मूर्त्ति

यह मूर्त्ति अन्धकासुर के वधवाली मुद्रा की है। (फलक २२) यह बड़ी अनुपम उतरी है। इसे उस समय के उत्कृष्ट भास्कर्य का एक नमूना कहा जा सकता है। प्रधान मूर्त्ति की ऊँचाई लगभग साढ़े ग्यारह फुट है। इसका सिर मुकुट-मंडित है, और उसके अलंकरण किसी भी दर्शक का मन मोह लेते हैं। ललाट पर चन्द्रकला और कपाल पर नाग भी स्पष्ट दीखते हैं। मुखमण्डल पर विराजित रौद्र छटा बड़ी ही सजीव और दुर्धर्ष दीख पड़ती है। जबड़े पूरे सधे हैं, और मुख के किनारे के निम्नगामी दाँत से रौद्रता टपकी पड़ती है। आँखें उत्फुल्ल हैं, मानों, क्रोधाभिभूत हों। बायें कन्धे से जाँध तक मुण्ड-माला लटकती है। मूर्त्ति स्पष्टतः अष्टभुजी है, पर इसके पाँच हाथ क्षतिग्रस्त हैं, और पाँव तो पूरे गायब हैं। सामने के दोनों, दाहिने और बायें, हाथ तो पुर्त्तगालियों द्वारा ही १६वीं शताब्दी में तोड़ दिये गये थे। पर, बाकी बाद में क्षतिग्रस्त हुए। कन्धे के नीचे हर बाँह में अलंकरण लगे हैं, और पहुँचियों पर पहुँचियाँ (केयूर)। कान में कुण्डल और गले के हार भी बड़े कलात्मक हैं। दाहिनी ओर के दूसरे हाथ में जो लम्बी तलवार उठी हुई है, उसकी अदा कुछ ऐसी है, मानों अब प्रहार होगा। बाईं ओर की दूसरी भुजा में खप्पड़ है, और उसके नीचे अन्धकासुर त्रिशूल से बँधा पड़ा है। तीसरे हाथ में शायद टंक (पत्थर छीलने की छेनी) है। हीरानन्द शास्त्री के अनुसार अन्धकरिपु के इस हाथ में घंटी है, जिसे ठीक उस मुहूर्त्त पर बनाया गया जब अन्धकासुर को त्रिशूल से बाँधने का अवसर आया। उनकी यह व्याख्या जँचती नहीं है; क्योंकि शिव के प्रसिद्ध आयुध त्रिशूल, डमरू, शृंग और परशु ही हैं। शिवकवचस्तोत्र में परशु, वेद, अंकुश, पाश, शूल, कपाल, ढक्का और अक्षसूत्र धारण किये शिव के अघोर दक्षिण रूप का वर्णन आया है।[1] वहीं उन्हें ईशान रूप में, वेद, अभय, वर, अंकुश, पाश, टंक, कपाल, ढक्का, अक्ष और शूल धारण किये हुए कहा गया है।[2] किन्तु घंटी का वर्णन कहीं भी नहीं आया है। सम्भव है, टंक को ही श्रीशास्त्री ने घंटी मान लिया हो।

बाईं ओर की चौथी भुजा तो टूटी हुई है, पर उसके समकक्ष दाहिनी ओर की भुजा से वे गजचर्म उठाये हुए से दीख रहे हैं। पास ही उत्कीर्ण गजमुण्ड से इस बात की सम्पुष्टि होती है कि यह गजासुर का चर्म था। गजासुर महिषासुर का पुत्र था। देवताओं से प्रेरित दुर्गा देवी द्वारा अपने पिता के वध का बदला लेने की भावना से उसने घोर तप किया। फल-स्वरूप ब्रह्मा ने उसे वरदान दिया कि वह काम के वशीभूत होनेवाले किसी पुरुष या स्त्री से नहीं मरेगा तथा महाबली और अजेय होगा। अब क्या था ! वह स्वयं शंकर की राजधानी वाराणसी में जाकर सबको सताने लगा। देवताओं ने शंकर की शरण ली। शंकर काम-विजयी हैं ही। उन्होंने गजासुर को युद्ध में हराकर उसे त्रिशूल में पिरो लिया। तब

१. देखें डॉ० जनार्दन मिश्र-लिखित 'भारतीय प्रतीक-विद्या' का पृ० ७६।

२. वही।

उसने शंकर की स्तुति की। आशुतोष ने 'वरं ब्रूहि' कहा। गजासुर की अनोखी माँग हुई—अपने त्रिशूल को पवित्र किये हुए मेरे चर्म को आप सदा धारण किये रहें और इसके फलस्वरूप आपका नाम 'कृत्तिवास' विख्यात हो। भक्तवत्सल दिगम्बर ने 'तथास्तु' कहा और गजासुर के उस विशाल चर्म को ओढ़ लिया। इसका विशद वर्णन महाशिव-पुराण के रुद्रसंहिता नामक चतुर्थ (कुमार) खण्ड के ५७वें अध्याय में आया है। इस मूर्त्ति में शंकर गजचर्म को ओढ़े हुए तो नहीं हैं। स्पष्टतः विजयोल्लास में उसे फहराने को उद्यत हैं। यह भी सम्भव है कि उन्होंने गजचर्म लेकर नृत्य किया हो।[1] इस रोचक कथानक में अन्धक को हिरण्याक्ष का दत्तक पुत्र दर्शाया गया है। डॉ० जनार्दन मिश्र ने 'भारतीय प्रतीक-विद्या' में अन्धकासुर के संहार का बहुत ही ललित एवं तात्त्विक विश्लेषण किया है—

हिरण्याक्ष को मूर्त्तिमन्त अनैश्वर्य कहा गया है—
मूर्त्तिमन्तमनैश्वर्यं हिरण्याक्षं विदुर्बुधाः ।
ऐश्वर्येणाविनाशेन स निरस्तोऽरिमर्दनः ॥[2]

मूर्त्तिमान् अनैश्वर्य को बुद्धिमान् लोग हिरण्याक्ष कहते हैं। हे अरिमर्दन, अविनाशी ऐश्वर्य के द्वारा उसका नाश हुआ।

उसका बेटा अन्धक अर्थात् विचार-शक्ति और ज्ञान को अन्धा कर देनेवाला महामोह है, जिसका शिव सर्वदा नाश करते रहते हैं। यह मोह रक्तबीज की तरह बढ़ता रहता है, सरलता से नष्ट नहीं होता। महामोह अर्थात् अविद्या का नाम ही अन्ध है—

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चपर्वैषा सांख्ययोगेषु कीर्त्तिता ॥

पाँच गुत्थियोंवाली अविद्या के नाम हैं—तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्ध (तामिस्र,), जैसाकि सांख्यकारिका में बताया गया है। अन्धकासुर के संहार का अर्थ है—तत्त्वज्ञान के विरोधी और प्रबल विघ्न अविद्या का नाश।

इस सम्बन्ध में श्रीगोपीनाथ कविराज का मत भी मान्य है :

"वराहपुराण के अनुसार उपर्युक्त अन्धकासुर और मातृकाओं की कथा एक अलंकृत उक्ति है। 'यह अविद्या के साथ आत्मविद्या के युद्ध का निदर्शन है। यह सब कुछ मैंने तुम्हें आत्मविद्यामृत के विषय में कहा।' शिव-रूप में विद्या अन्धकासुर-रूपी अविद्या से युद्ध करती है। विद्या जितना ही इसपर आक्रमण करती है, कुछ समय तक अविद्या उतनी ही बढ़ती जाती है। अन्धकासुर के रूपों की संख्या का बढ़ना इसीका निदर्शन है।

१. 'जगद्रक्षायै त्वं नटसि'—शिवमहिम्नःस्तोत्रम्।
२. प्रतिमालक्षण, पृ० ३०।

जबतक हृदय के काम, क्रोधादि विकार पूर्णतः विद्या के वश में नहीं आ जाते, तबतक अन्धकार का नाश नहीं हो सकता।" अविनाशी सर्वात्मा का यही शिव-स्वरूप है।[१]

शिवमहापुराण के अन्तर्गत रुद्रसंहिता के युद्धखण्ड में महाबली अन्धक की उत्पत्ति और सदाशिव से पराजित होकर गणपति के पद की प्राप्ति का बड़ा विस्मयकारी वर्णन किया गया है। एक बार विहार करने की इच्छा से पार्वती और परमेश्वर अपने गणों के साथ मन्दराचल पर्वत पर पहुँचे। वहाँ गिरिजा ने नर्मक्रीड़ा 'खेल-ही-खेल' में अपने पाणि-पल्लवों से शिवजी के नेत्रों को मीच लिया।[२] उस स्पर्श से शम्भु के ललाट पर मदजल प्रकट हुआ। उत्तरोत्तर उष्णता से जब वह पृथ्वी पर गिरा तो उससे एक गर्भ उत्पन्न हुआ। उसी से भयंकर अन्धक उद्भूत हुआ। वह करालमुख, क्रोधी और कृतघ्न जान पड़ता था, साथ ही अन्धा, विरूप, जटाधारी, काला और मनुष्य से भिन्न था, पर सुन्दर बालोंवाला था।[३] उसे देखकर गिरिजा को स्वभावतः जिज्ञासा हुई—यह घोर और भयंकर प्राणी किस तरह प्रादुर्भूत हुआ और यह किसका पुत्र है?[४] तब शिव ने उन्हें समझाया—तुमने अपने पाणिपल्लवों से जो मेरे नेत्र मीचे उसी स्पर्श से उद्भूत स्वेद से यह चण्डवीर्य प्राणी प्रकट हुआ है, और यह हमलोगों की 'अन्धक' नामा स्वेदज सन्तान है।[५] यह जानकर अपने पुत्र के समान गिरिजा ने उसका लालन-पालन किया। दैवयोग से दानवेन्द्र हिरण्याक्ष उसी समय पुत्र की कामना से महादेव की तपश्चर्या में लीन था। जब उस उग्रतप से चन्द्रमौलीश्वर प्रसन्न हुए तब दानवेन्द्र ने वर माँगा—मुझे वीर्यवान् पुत्र दीजिए, मेरे भाई के अनन्तवीर्यवाले प्रह्लाद आदि पाँच पुत्र हैं, लेकिन मेरे कोई पुत्र नहीं है, अगर मैं निर्वंश मरा तो कौन मेरे राज्य को विभूषित कर

---

१. डॉ० जर्नादन मिश्र-लिखित 'भारतीय प्रतीक-विद्या', पृ० ८२-८३।

२ पूर्वं दिशि मन्दरशैलसंस्था कपर्दिनश्चण्डपराक्रमस्य।
चक्रे ततो नेत्रनिमीलिनं तु सा पार्वती नर्मयुतं सलीलम्॥
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, ४२/१६

३. तत्स्पर्शयोगाच्च महेश्वरस्य कराच्च तस्याः स्खलितं यदाम्भः।
शम्भोर्ललाटे क्षणवह्नितप्तो विनिर्गतो भूरि जलस्य विन्दुः॥
गर्भो बभूवाथ करालवक्त्रो भयङ्करः क्रोधपरः कृतघ्नः।
अन्धो विरूपो जटिलश्च कृष्णो नरेतरो वैकृतिकस्सुरोमा॥
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धकाण्ड, ४२।८१।१९।

४. गौर्युवाच : कोऽयंविरूपी भगवन्हि जातो नावग्रतो घोरभयङ्करश्च।
वदस्व सत्यं मम किं निमित्तं सृष्टोऽथ वा केन च कस्य पुत्रः॥
—वही, २३।

५. निमीलिते चक्षुषि मे भवत्या स स्वेदजो मेऽन्धकनामधेयः।
—वही, २५, उत्तरार्द्ध।

उसकी परम्परा बढ़ायेगा ?[१] शंकर ने दिव्य दृष्टि से देखकर कहा—दैत्यराज, तुम्हें अपनी कोई और सन्तान होने को नहीं है, फिर भी मैं तुम्हें एक पुत्र दूँगा।[२] यह कहकर उन्होंने उसे अन्धक नामक दैत्य प्रदान किया और कहा—यह तुम्हारे जैसा ही वीर्यवान् और अपराजित है; अपने सारे दु:खों को भूलकर इसे पुत्र-रूप में वरण करो।[३] इस तरह दानव-कुल में पलकर जब अन्धक बड़ा हुआ तब उसे सर्वप्रथम अपने चचेरे भाइयों से जूझना पड़ा। वे सतत उसे चिढ़ाते रहते थे—तुम अन्धे हो, तुम्हें राज्य से क्या काम ? हिरण्याक्ष मूढ़ था कि वैसे घोर तप से मात्र तुझ-सा बेडौल कलिप्रिय अन्धा पुत्र पाया, जो राज्य का उत्तराधिकारी तो हो ही नहीं सकता; क्योंकि इस तरह का दत्तक पुत्र राज्य पायगा तो कैसे ?[४] इस तरह भाइयों की कटक्तियों से व्यथित होकर उसने उनसे बदला लेने की भावना से सृष्टिकर्त्ता की आराधना में घोर तप किया। फलतः पद्मयोनि रीझे और अन्धक की माँग हुई—मुझ अन्धे को दिव्य नेत्र मिले, इन्द्रादि मुझे कर दिया करें और किसी से मेरी मृत्यु न होने पावे।[५] उसकी इस दारुण माँग पर ब्रह्मा सहम उठे। उन्होंने कहा—मरणशील व्यक्ति धराधाम पर मृत्यु को किसी-न-किसी तरह तो स्वीकारता ही है, अतः तुम्हें भी चाहिए कि मृत्यु के सम्बन्ध में अपनी पसन्द से कोई शर्त्त स्वीकार करो। अस्तु, उसे पता

---

१. पुत्रस्तु मे चन्द्रललाट ! नास्ति सुवीर्यवान्दैत्यकुलानुरूपी ।
तदर्थमेतद्व्रतमास्थितोऽहं तं देहि देवेश सुवीर्यवन्तम् ॥
यस्माच्च मद्भ्रातुरनन्तवीर्याः प्रह्लादपूर्वा अपि पञ्च पुत्राः ।
ममेह नास्तीति गतान्वयोऽहं को मामकं राज्यमिदं विभूषेत् ॥
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, ४२।३३।३४

२. तमाह दैत्याधिप ! नास्ति पुत्रस्त्वद्वीर्यजः किन्तु ददामि पुत्रम् ।
वही, ३८ उत्तरार्ध (शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्ध०)

३. ममात्मजं त्वन्धकनामधेयं त्वत्तुल्यवीर्यं त्वपराजितञ्च ।
वृणीष्व पुत्रं सकलं विहाय दुःखं प्रतीच्छस्व सुतं त्वमेव ॥
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड,अध्याय, ४२।३९

४. तैर्भ्रातृभिस्सम्प्रयुतो विहारे किमन्ध ! राज्येन तवाद्य कार्यम् ।
हिरण्यनेत्रस्तु बभूव मूढः कलिप्रियं नेत्रविहीनमेव ॥
यो लब्धवांस्त्वां विकृतं विरूपं घोरैस्तपोभिर्गिरिशं प्रसाद्य ।
स त्वं न भागी खलु राज्यकस्य किमन्यजातोऽपि लभेत राज्यम् ॥
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, ४४।१ (उत्तरार्द्ध २।३ (पूर्वार्द्ध)

५. अन्धस्य दिव्यं हि तथास्तु चक्षुरिन्द्रादयो मे करदा भवन्तु ।
मृत्युस्तु माभून्मम देवदैत्यगन्धर्वयक्षोरगमानुषेभ्यः ॥
नारायणाद्वा दितिजेन्द्रशत्रोस्सर्वाज्जनात्सर्वमयाच्च शर्वात् ।
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, ६६।१२।१२ (पूर्वार्द्ध)

तो था नहीं कि उसकी माता कौन है। ऐसी स्थिति में देव-प्रेरित, उसे यह धारणा हुई कि अपनी माता के प्रति उसके मन में काम-वासना होने की कदापि कोई सम्भावना नहीं है। अतः उसने स्वीकारा–अपनी माता के प्रति कामातुर होने पर ही मेरा विनाश हो। अन्धक के इस वचन से ब्रह्मा बड़े विस्मित हुए और स्वयम्भू का मन-ही-मन स्मरण कर अन्धक से 'तथास्तु' कहा।[1] साथ ही, अन्धक ने यह वर भी माँगा कि ब्रह्मा स्वयं मांगलिक स्पर्श से उसके शरीर को हृष्टपुष्ट, बली और नेत्रयुक्त कर दें। इस तरह वरदान पाकर जब वह अपने भाइयों के पास पहुँचा तब ब्रह्मा के वरदान के फलस्वरूप उनलोगों ने उसे सारा राज्य दे दिया और वे उसके वशीभूत हो गये।[2] फिर क्या था? उसने युद्ध में चराचर को जीतकर उन्हें अपने वश में कर लिया।[3] इस तरह अपने उत्तरोत्तर बढ़ते उत्कर्ष के मद में वह वेद, द्विज, देवता और गुरु का भी तिरस्कार करने लगा।[4] एक बार अन्धक के दुर्योधन, वेधस और हस्ती नाम के मन्त्रियों ने एक गुफा में भगवान् शिव के साथ अनिन्द्यसुन्दरी पार्वती को देखा। उस देवोत्कृष्ट सौन्दर्यराशि को देखकर उन्हें नेत्र-युक्त होने का फल मिला और फिर इस असार संसार में उनके लिए और किसी वस्तु को देखने का प्रयोजन नहीं रह गया।[5] अपने मन्त्रियों से यह जान उसने महेश के पास उन्हें इस संदेश के साथ भेजा कि वे उसे वह दिव्यांगना सौंप दें।[6] स्त्री के साथ तप कैसा?[7] साथ ही, महेश से पृच्छाएँ की गईं कि तुम कौन हो, किसके पुत्र हो और किसलिए यहाँ तपस्या करते हो? स्वयम्भू ने लीला के लिए उत्तर दिया—मेरे पिता कौन हैं, मुझे स्मरण नहीं है और न मैं अपनी माता को ही जानता हूँ। इस तरह मैं अलक्ष्य-

---

१. कायेन वाचा मनसाप्यगम्या नारी नृलोकस्य च दुर्लभा या।
तां कामयानस्य ममास्तु नाशो दैत्येन्द्रभावाद्भगवन्स्वयम्भूः॥
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड. ४४।१६

२. उत्सृज्य राज्यं सकलं च तस्मै प्रह्लादमुख्यास्त्वथ दानवेन्द्राः।
तमागतं लब्धवरं च मत्वा भृत्या बभूवुर्वशगास्तु तस्य॥
—वही, २३

३. त्रैलोक्यमेतद्धि चराचरं वै वशं चकारात्मनि संनियोज्य।
—वही, २६, पूर्वार्द्ध

४. वेदान्द्विजान्वित्तमदाभिभूतो न मन्यते स्माप्यमरान्गुरूँश्च।
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, ४४।३३ (पूर्वार्द्ध)

५. सा येन दृष्टा स च दृष्टिमान्स्यात् दृष्टेन चान्येन किमत्र कार्यम्॥
—वही, ४४ (उत्तरार्द्ध)

६. तस्येयमीदृक्तरुणी सुरूपा देया शुभा दैत्यपतेर्मुनीन्द्र।
—वही, ५० (उत्तरार्द्ध)

७. प्रयच्छ नारीं मम सान्त्वपूर्वं स्त्रिया तपः किं कुरुषे विमूढ।
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, ४४ (पूर्वार्द्ध)

जन्मा हूँ। साथ ही विरूपाक्ष भी। अभी यहाँ महापाशुपत व्रत का पालन कर रहा हूँ।[१] मेरी यह तन्वी भार्या सर्वांगसुन्दरी ही नहीं, सर्वंसहा और सर्वसिद्धिप्रदायिनी भी है। अतः उसे छोड़ना मेरे लिए दुष्कर है।[२] पार्वती को पाने का दूसरा कोई उपाय न देख अन्धक ने महेश की तपःपूत गुफा पर आक्रमण कर दिया। उस समय गणश्रेष्ठ वीरक द्वारपाल के रूप में वहाँ पहरा दे रहा था। उसके बारम्बार रोकने पर भी अन्धक नहीं माना। घनघोर युद्ध हुआ और दैत्य भाग खड़े हुए, पर वे माननेवाले थे नहीं। फिर भी सेना बटोरकर चढ़ाई की तैयारी करने लगे। इधर महेश को अपने महापाशुपत व्रत की चिन्ता थी। मरणशील अंधक के इस तरह आक्रमण कर देने से अमृतदेव के व्रत में विघ्न पड़ा। अतः फिर से उस व्रत के अनुष्ठान की आवश्यकता हुई। इस स्थिति से पार्वती को अवगत कराके योगीश्वर महापाशुपत व्रत के अनुष्ठान के लिए गहन वन में चले गये और अकेली पार्वती मन्दराचल पर्वत पर उनके आगमन की प्रतीक्षा करने लगी।[३] पुत्रतुल्य वीरक वहाँ उनकी रक्षा करता रहा। समय पाकर अन्धक ने सेना बटोरकर पुनः चढ़ाई कर दी। लोमहर्षक युद्ध हुआ। शक्तिस्वरूपा पार्वती की प्रेरणा से ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि सारे देवगण स्त्रियों का रूप धरकर पार्वती के पास युद्ध में आ जुटे। रणवाद्यों के तुमुल घोष से भगवान् शिव का ध्यान भी इधर आकृष्ट हुआ। तबतक उनके महापाशुपत व्रत का अनुष्ठान भी पूरा हो चुका था। अन्धक की इस चुनौती पर वे भी युद्धभूमि में आ पहुँचे। प्रलयकारी युद्ध हुआ। अस्त्र-शस्त्र से शरीर जर्जर हो गया। पर यह क्या ? पृथ्वी पर गिरे हुए उसके रक्तकणों से बहुत-से अन्य अन्धक प्रकट होने लगे। यहाँ तक कि अन्धकों से रणभूमि छा गई।[४] इस तरह जब अन्धकों की सेना के

---

१. नाहं क्वचित्स्वं पितरं स्मरामि गुहान्तरे घोरमनन्यचीर्णम्।
एतद् व्रतं पाशुपतं चरामि न मातरं त्वंशतमो विरूपः॥
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, ५८।

२. अमूलमेतन्मयि तु प्रसिद्धं सुदुस्त्यजं सर्वमिदं ममास्ति।
भार्या ममेयं तरुणी सुरूपा सर्वंसहा सर्वगतस्य सिद्धिः॥
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, ५९।

३. स तत्र गत्वा व्रतमुग्रदीप्तो गतो वनं पुण्यतमं सुघोरम्।
चर्तुं हि शक्यं तु सुरासरैर्यन्न तादृशं वर्षसहस्रमात्रम्।
सा पार्वती मन्दरपर्वतस्था प्रतीक्ष्यमाणागमनं भवस्य॥
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, १४ (उतरार्ध) और १५।

४. तदा यद्विष्यन्दात्क्षितितलगतै रन्धकगणैरतिव्याप्तं घोरं विकृतवदनं स्वात्मसदृशम्।
दधत्कल्पान्ताग्निप्रतिमवपुषा भूतपतिना त्रिशूलेनोद्भिन्नस्त्रिपुररिपुणा दारुणतरम्॥
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, ३३।

रक्तस्राव से दूसरी सेनाएँ प्रकट होने लगीं, तब मतिमान् विष्णु ने अवसर देखकर प्रमथ-पति को सलाह दी कि वे एक क्षुधा-स्वरूपा चण्डवदना देवी का सर्जन करें, जो अन्धक के रक्तस्राव को पीती चले और पृथिवी पर उसे न गिरने दे। अस्तु, प्रमथपति ने अपने कान से अजिता क्षुधी नाम की धतुरा देवी का सर्जन किया और उसने अन्धक की सेना के व्रण से निःसृत रुधिर पीना प्रारम्भ कर दिया। इस क्रम में अन्ततोगत्वा सिर्फ मूल अन्धक ही बच गया। बाकी सभी नीरक्त होकर खेत आये। इस तरह लाचार हो जाने पर अन्धक अपने कुलोचित छात्रधर्म का स्मरण कर शिव के साथ पशु के समान अपने हस्तपादादि तथा मस्तक से युद्ध करने लगा।[1] तभी प्रमथपति सदाशिव ने उसे परास्त कर उसकी छाती में त्रिशूल भोंककर उसे उसी त्रिशूल पर ठूँठ के समान आकाश में उठा लिया। मौका देखकर सूर्य ने अपने प्रचण्ड ताप से उसे झुलसा दिया। चन्द्रमा, वायु और मेघों ने भी उसके शरीर को जर्जरित करने में कुछ भी उठा नहीं रखा, पर फिर भी उस दैत्य अन्धक ने अपने प्राण नहीं त्यागे। अपितु वह करुणानिधि शिव की स्तुति करने लगा। आशुतोष प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अपने गणों के अध्यक्ष गणपति का पद दे दिया।[2] जो भी हो, अन्धकरिपु की इस मूर्त्ति के अंग-अंग से अपार बल-विक्रम टपकता-सा जान पड़ता है। वीर और रौद्र दोनों रसों का इसमें उदात्त परिपाक हुआ है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, इस मूर्त्ति की आठ में से पाँच भुजाएँ टूट चुकी हैं। इसकी पृष्ठभूमि और पाद-तल की भी प्रायः सारी मूर्त्तियाँ बेहद टूटी-फूटी हैं। प्रधान मूर्त्ति की दाहिनी ओर एक पुरुष और दो स्त्रियों की मूर्त्तियों के कुछ अवशिष्ट भाग हैं और उनके ऊपर एक छोटी मूर्त्ति के साथ दो ऋषि-मूर्त्तियाँ। इन सबके ऊपर एक और स्त्री-मूर्त्ति दीखती है और इसके आमने-सामने बौनों की कुछ मूर्त्तियों के अवशेष हैं। साथ ही एक गजारूढ मूर्त्ति भी झाँकती-सी दिखाई पड़ती है। ये अवशेष कुछ इतने क्षतिग्रस्त हैं कि इनका कुछ परिचय देना असम्भव नहीं दीखता है। हाँ, ऊपरी कतार की मूर्त्तियाँ अभी भी बड़ी मनोहारिणी जँचती हैं। उनके बीच एक स्तूपनुमा अलंकार है, जिसे दो पुजारियों के साथ दो-दो उड्डीयमान मूर्त्तियाँ वहन करती-सी जान पड़ती हैं। कदाचित् यह गर्भगृह और इसमें स्थापित शिवलिंग का प्रतीक हो। दोनों छोरों पर लुभावनी मिथुन-मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इस पटल की छत में चित्रकारी का कुछ अंश

---

१. ततस्त्वेको दैत्यस्तदपि युयुधे शुष्करुधिरस्तलाघातैर्घोरैरशनिसदृशैर्जानुचरणैः।
नखैर्वज्राकारैर्मुखभुजशिरोभिश्च गिरिशं स्मरन् क्षात्रं धर्मं स्वकुलविहितं शाश्वतमजम्॥
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, अध्याय ४६, श्लोक ३७।

२. रणे शान्तः पश्चात्प्रमथपतिना भिन्नहृदयस्त्रिशूले सम्प्रीतो नभसि विधृतस्स्थाणु सदृशः
अधः कायश्शुष्कस्तपनकिरणैर्जीर्णतनुमाञ्जलासारैर्मेघैः पवनसंहितैः क्लेदितवपुः॥
विशीर्णश्शीतांशोस्तुहिनशकलाकारशकलैस्तथाभूतः प्राणांस्तदपि न जहौ दैत्यवृषभः।
तदा तुष्टश्शम्भुः परमकरुणावारिधिरसौ ददौ तस्मै प्रीत्या गणपतिपदं तेन विनुतः॥
—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, ३८ और ३९।

अभी भी अवशिष्ट हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि प्रारम्भ में पूरी छत चित्रकला-विभूषित थी।

कल्याणसुन्दर

शिव-पार्वती-विवाह की यह कल्याणसुन्दर मूर्त्ति बड़ी ही प्रशस्त है। भगवान् शिव का यह स्वरूप भारतीय शिल्प में उत्तर एवं दक्षिण में समान रूप से देखने को मिलता है। प्रतिमा के लाक्षणिक ग्रन्थों के अनुसार ऐसी कल्याणसुन्दर मूर्त्तियों में साधारणतया पार्वती और शिव खड़े हुए दिखलाये जाते हैं। कहीं-कहीं पार्वती शिव के दाहिने और अधिकांशतः बायें खड़ी अंकित मिलती हैं। विवाह के पूर्ववाले दृश्य में शिव के दाहिने पार्वती की मूर्त्ति अंकित रहती है और विवाहोपरान्त बायें। शिव के हाथों में पार्वती का हाथ होना उनके पिता दक्ष द्वारा कन्यादान का परिचायक है। इस विवाह-कार्य में ब्रह्मा पुरोहित बने हैं तथा अग्नि-यज्ञशाला एवं हवन-कुण्ड के अधिष्ठाता। दक्ष-प्रजापति द्वारा अपनी कन्या पार्वती के कन्यादान के साक्षी के रूप में भगवान् विष्णु भी लक्ष्मी-सहित वहाँ विराजमान अंकित किये गये हैं। इन लोगों के पार्श्व में अनेक देव-देवियों की आकृतियाँ भी उत्कीर्ण हैं। कदाचित् ये सप्तमातृकाओं, दस दिक्पालों, यक्षों, ऋषियों एवं गन्धर्वों की आकृतियाँ हैं। ये सारी आकृतियाँ अंजलि या प्रणाम-मुद्रा में सन्नद्ध हैं और एकाग्रचित्त से विवाहोत्सव का अवलोकन कर रही हैं। एलोरा के एक ऐसे पटल में द्विभुजी पार्वती के एक हाथ को शिव पकड़े हुए हैं, ऐसा दिखाया गया है। जी हो, एलिफैण्टा-लयण के इस पटल में प्रस्तर-खण्ड पर खचित शिव-पार्वती के विवाह का दृश्य बड़ा ही मनोमोहक उतरा है। जगन्माता और जगत्पिता की संयुक्त प्रतिमाओं में लालित्य और शक्ति का, मानवीय संवेदनशीलता और आत्मिक भावमग्नता का, शारीरिक कोमलता और कमनीयता तथा आकारमातृता एवं रूप और संयम का अद्भुत संयोजन हुआ है। यहाँ शिव की मूर्त्ति लगभग पौने ग्यारह फुट से भी अधिक ऊँची है। सामने के एक बायें हाथ को छोड़कर बाकी तीन हाथ और दाहिना पाँव गायब हैं। वधूवेशी पार्वती अनुराग की, नर के प्रति नारी की आदिम आसक्ति की, सजीव प्रतिमा-सी जान पड़ती हैं। कुंचित केश, दिव्य भाल, गले में सुशोभित मालाएँ, कानों में कर्णफूल और कटितट पर करधनी एक ओर जहाँ अलंकरण के प्रति मानव-जाति के सहज आकर्षण के प्रतीक हैं, वहाँ तत्कालीन भारतीय समाज के सौंदर्य के परिचायक भी हैं। दिव्यालंकार-विभूषित इस गरिमामयी मूर्त्ति को देखकर महाकवि कालिदास के कुमारसम्भव में वधूवेशधारी पार्वती का मनोमोहक वर्णन याद हो आता है।

सा सम्भवद्भिः कुसुमैर्लतेव ज्योतिर्भिरुद्यद्भिरिव त्रियामा।
सरिद्विहङ्गैरिव लीयमानैरामुच्यमानाभरणा चकासे॥

—कुमारसम्भव, ७।२१।

जैसे फूल लगने पर लताएँ स्वयं खिल उठती हैं, जैसे तारों के उदित होने पर

रात जगमगा उठती है, और अन्तर्लीन हो रहे पक्षियों से नदी शोभित होती है, वैसे ही इन अलंकरणों से जगन्मोहिनी की सुन्दरता और भी उद्भासित हो उठी।

अम्भोधर-श्यामल कुंचित केशपाश से आवेष्टित इस दुल्हन के अनुराग-रंजित मुख-मंडल की तुलना में काले भ्रमरों से घिरे जड़ कमल की और असित बादलों से अवगुंठित बेचारे चाँद की क्या हस्ती? कविकुलगुरु के शब्दों में :

लग्नद्विरेफं परिभूय पद्मं समेघलेखं शशिनश्च बिम्बम्।
तदाननश्रीरलकैः प्रसिद्धैश्चिच्छेद सादृश्यकथाप्रसङ्गम्॥

—कुमारसम्भव, ७।१६

हमारे ज़ीवन में विवाह एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। उसकी लगन लगते ही कुमारियों की वयःसन्धि चहक उठती है। नवोढ़ा गौरी की इस कमनीय मूर्त्ति को देखने से ऐसा भान होता है, मानों, विवाह-संस्कार का सायक साथ बँध चुका है। इस तरह, विवाह-संस्कार से दीक्षित होने के फलस्वरूप इनका सौन्दर्य और भी निखर उठा है। अनूठी उपमाओं के अद्वितीय महाकवि कालिदास ने इसकी तुलना शुक्ल पक्ष में अंशुमाली की स्फूर्तिदायिनी किरणों को पाकर दमक उठनेवाली चन्द्रकला से इस प्रकार की है :

बभौ च सम्पर्कमुपेत्य बाला नवेन दीक्षाविधिसायकेन।
करेण भानोर्बहुलावसाने सन्धुक्ष्यमाणेव शशाङ्करेखा॥

—कुमारसम्भव, ७।८।

पार्वती के होठों पर पगी कमनीय मुस्कुराहट का क्या ही अच्छा वर्णन महाकवि ने किया है :

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य॥

—कुमारसम्भव, १।४४।

यदि उज्ज्वल फूल नवीन पल्लव पर रखा जाय, यदि मोती लाल-लाल मूँगों पर राजित हो, तभी ये दोनों, सुमन तथा मोती, पार्वती के लाल होठों पर फैली हुई उनकी कमनीय मुस्कुराहट की समता पा सकते हैं, अन्यथा नहीं।

कोमलांगी पार्वती की सुकुमार भुजाओं की अनूठी उपादेयता को महाकवि कालिदास ने किस विलक्षण ढंग से आँका है :

शिरीषपुष्पाऽधिकसौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितर्कः।
पराजितेनाऽपि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन॥

—कुमारसम्भव, १।४१।

इसके विपरीत सदाशिव ने तो मात्र अपनी शक्ति से ही अपने वेश को विवाह-योग्य बना लिया था। कवि-सम्राट् कालिदास के शब्दों में :

स एव वेषः परिणेतुरिष्टं भावान्तरं तस्य विभोः प्रपेदे ।

—कुमारसम्भव, ७।३१।

उनके लिए चिता का भस्म ही उजला अंगराग बन गया। कपाल पर चन्द्रकला की विमल-श्री ने शिरोभूषण का काम किया। गजचर्म ही रेशमी वस्त्र बन गया, जिसके आँचलों पर गोरोचन से लाल छपाई की हुई थी :

बभूव भस्मैव सिताङ्गरागः कपालमेवामलशेखरश्रीः ।
उपान्तभागेषु च रोचनाऽङ्को गजाजिनस्यैव दुकूलभावः ।।

—कुमारसम्भव, ७।३२।

उनके भाल पर के तिलक का क्या कहना? पीलीपुतलीवाला ज्योतित तृतीय नेत्र ही हरिताल के सुन्दर तिलक के रूप में सुशोभित हुआ :

शङ्खान्तरद्योति विलोचनं यदन्तर्निविष्टामलपिङ्गतारम् ।
सान्निध्यपक्षे हरितालमय्यास्तदेव जातं तिलकक्रियायाः ।।

- कुमारसम्भव, ७।३३।

फिर, आभूषणों की कौन कहे, उनके अंगों में जो बहुत-से साँप लिपटे थे वे सचमुच ही अनोखे आभूषण सिद्ध हुए। उनके फणों में विराजित मणियाँ तो सतत ज्यों-की-त्यों दमकती रहती थीं :

यथाप्रदेशं भुजगेश्वराणां करिष्यतामाभरणान्तरत्वम् ।
शरीरमात्रं विकृतिं प्रपेदे तथैव तस्थुः फणरत्नशोभाः ।।

—कुमारसम्भव, ७।३४।

नील नभोमण्डल का चाँद तो सिर्फ रात में ही चमकता है और वह भी कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष की तिथियों के अनुपात में घटता-बढ़ता रहता है। फिर, उसके अंक में कलंक भी समाया रहता है। पर, चन्द्रशेखर के शीर्ष पर जो दूज-सरीखी चन्द्रकला विराजती है, वह तो रात की कौन कहे, दिन में भी सतत कान्तिपूर्ण बनी रहती है और छोटे आकार की होने के कारण उसमें कलंक का भी लवलेश नहीं है। जिनके भाल पर इस तरह की नैसर्गिक चूड़ामणि हो, वहाँ भला और कौन-सा अड़ीला शिरोभूषण अड़ सकेगा? स्वयं कविकुलगुरु के शब्दों में :

दिवाऽपि निष्ठ्यूतमरीचिभासा बाल्यादनाविष्कृतलाञ्छनेन ।
चन्द्रेण नित्यं प्रतिभिन्नमौलेश्चूडामणेः किं ग्रहणं हरस्य ।।

—कुमार सम्भव, ७।३५।

अपनी शक्ति से संसार के सभी शृंगारों को बनाने में निपुण और सदा अनोखे काम करनेवाले सर्वेश्वर के इस सौन्दर्य को आँके तो कौन ?

इत्यद्भुतैकप्रभवः प्रभावात्प्रसिद्धनेपथ्यविधेर्विधाता ।
आत्मानमासन्नगणोपनीते खड्गे निषक्तप्रतिमं ददर्श ।।

—कुमारसम्भव, ७।३६।

सदाशिव की गरिमामयी मूर्त्ति को देखकर विवाह-यज्ञ में समागत सभी स्त्रियाँ सुध-बुध खोकर इस तरह टकटकी लगाकर उन्हें देखती रहीं, मानों वे अपने नेत्रों से उनकी सौन्दर्य-सुधा को पी रही थीं । इस क्रम में शायद उनकी सारी ज्ञानेन्द्रियाँ आँखों में ही समा गई थीं —

तमेकदृश्यं नयनैः पिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि ।
तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा ।।

— कुमारसम्भव, ७।६४।

उन सभी स्त्रियों की समझ में अब यह बात आई कि ऐसे सर्वांगसुन्दर सदाशिव के लिए ही पार्वती ने ऐसा दुष्कर तप किया था । सदाशिव के सौन्दर्य की उत्कृष्टता कुछ ऐसी अद्वितीय थी कि जिस किसी स्त्री को उनका मात्र दासी होने का भी सौभाग्य मिले, वह कृतकृत्य हो उठेगी । फिर जिन्हें इनकी अंकशायिनी बनने का सौभाग्य प्राप्त हो, उनका तो कहना ही क्या ?

स्थाने तपो दुश्चरमेतदर्थमपर्णया पेलवयाऽपि तप्तम् ।
या दास्यमप्यस्य लभेत नारी सा स्यात्कृतार्था किमुताङ्कशय्याम् ।।

—कुमारसम्भव, ७।६५।

सौन्दर्य में एक-दूसरे से बढ़े-चढ़े इन दोनों की जोड़ी को देखकर उन स्त्रियों की यह भी धारणा बँधी कि यदि उन दोनों का विवाह न होता तो लोग सच ही ऐसा समझते कि सृष्टिकर्त्ता ने व्यर्थ ही इन्हें इस तरह सौन्दर्य-धनिक बनाने में परिश्रम किया और सब किया-कराया व्यर्थ हो गया :

परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत् ।
अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां विफलोऽभविष्यत् ।।

—कुमारसम्भव, ७।६६।

उन्हें हठात् ऐसी भी धारणा हुई कि त्रिलोचन ने कामदेव को क्रोध से भस्म नहीं किया होगा, अपितु इनकी अपरिमेय सुन्दरता को देखकर, टीस के मारे, वह स्वयं जल मरा होगा :

न नूनमारूढरुषा शरीरमनेन दग्धं कुसुमायुधस्य ।
व्रीडादमुं देवमुदीक्ष्य मन्ये संन्यस्तदेहः स्वयमेव कामः ।।

— कुमारसम्भव, ७।६७।

महाकवि कालिदास की क्या ही अनोखी सूझ है !

सद्योविवाहिता पार्वती की प्राणमोहक मुद्रा हृदय की रागात्मकता की वृद्धि करती है। पति के पार्श्व में खड़ी अनुराग की मूर्त्ति पार्वती के अधरों से आनन्द-विभोर हृदय की लालिमा छलक-सी रही है। अधर खुले, पलक-दल स्वप्न-विभोर-से हैं और प्रफुल्ल कपोलों पर अंग-स्पर्श की पुलकानुभूति क्रीड़ा-सी कर रही है। सद्यः विकच-सुमन से मुखमण्डल पर व्रीड़ा की छाया स्पष्ट दीखती है। मूर्त्ति के समक्ष खड़ा प्रेक्षक भूल जाता है कि यह मूर्त्ति सजीव नारी की नहीं, वरन् शिलाखण्ड है। इसके अधर पर ईषत् मुस्कान की रेखाएँ देखकर तो ऐसा अनुभव होता है, मानों यह मूर्त्ति अब खिलखिला उठेगी।

इस अनुराग-रंजित मूर्त्ति के देदीप्यमान चन्द्रानन को देखकर सदाशिव के नेत्र-रूपी कुमुद खिल उठे-से जान पड़ते हैं। ऐसा भान होता है, मानों शरदागम से लोग जैसे प्रसन्न हो उठते हैं वैसे ही उनका अभ्यन्तर भी जल के समान स्वच्छ हो गया है।

तया प्रवृद्धाननचन्द्रकान्त्या प्रफुल्लचक्षुः कुमुदः कुमार्या।
प्रसन्नचेतःसलिलः शिवोऽभूत्संसृज्यमानः शरदेव लोकः॥

—कुमारसम्भव, ७।७४।

इस पटल में पार्वती के पार्श्व में ही शिव खड़े हैं। शिव और पार्वती के दक्षिण हस्त खण्डित हैं और दोनों तिर्यक् मुद्रा में खड़े हैं, जिसे देखकर यह सहज अनुमान किया जा सकता है कि शिव पार्वती के दक्षिण कर-कमल को पकड़े हुए थे। कुमारसम्भव के उमा-परिणयवाले सातवें सर्ग में महाकवि कालिदास ने इस शुभ घड़ी का बड़ा ही ललित वर्णन किया है :

तस्याः करं शैलगुरूपनीतं जग्राह ताम्राङ्गुलिमष्टमूर्त्तिः।
उमातनौ गूढतनोः स्मरस्य तच्छङ्किनः पूर्वमिव प्ररोहम्॥

—कुमारसम्भव, ७।७६।

तभी हिमालय ने पार्वतीजी का हाथ आगे बढ़ाकर शंकरजी के हाथ पर रख दिया। पार्वतीजी का वह लाल-लाल अँगुलियों वाला हाथ ऐसा दीख रहा था जैसे महादेवजी के डर से पार्वती के शरीर में छिपे हुए कामदेव के अंकुर फिर से निकल रहे हों :

रोमोद्गमः प्रादुरभूदुमायाः स्विन्नाङ्गुलिः पुङ्गवकेतुरासीत्।
वृत्तिस्तयोः पाणिसमागमेन समं विभक्तेव मनोभवस्य॥

— कुमारसम्भव, ७।७७।

इस प्रकार उनके हाथ पकड़ते ही पार्वतीजी को रोमांच हो आया और महादेवजी की अंगुलियों से भी पसीना निकलने लगा। इससे ऐसा जान पड़ा, मानों इन दोनों का हाथ मिलाकर कामदेव ने दोनों को एक साथ अपने अधीन कर लिया हो। पर, इस युगल मूर्त्ति के अब तो वे हाथ ही खण्डित पड़े हैं, अतः इन अनुभूतियों को आँका जाय तो कैसे ? विवाह के समय जिन पार्वती और शंकरजी के स्मरण किये जाने पर वे वधू और वर की

शोभा बढ़ाते हैं, उन्हीं पार्वती और शंकरजी का जब स्वयं ही विवाह हो रहा हो, तब उनकी शोभा का क्या कहना ?

प्रयुक्तपाणिग्रहणं यदन्यद्वधूवरं पुष्यति कान्तिमग्र्याम् ।
सान्निध्ययोगादनयोस्तदानीं किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य ।।

—कुमारसम्भव, ७।७८।

शिव पार्वती की ओर और पार्वती शिव की ओर झुके हैं। पुरुष के प्रथम स्पर्श-जनित पुलक की छाया पार्वती के मुखमण्डल पर सहज ही देखी जा सकती है। पीन वक्षोज, क्षीण कटि, उन्मीलित नयन, पल्लव-दल से रससिक्त और सहास्य अधराधर देखकर अज्ञात मूर्त्तिकार की कोमल कल्पना, कलागत दक्षता और सौन्दर्यबोध की गहराई का पता चलता है।

शिव-विवाह का जो दृश्य यहाँ खचित किया गया है, वह कोई ऐतिहासिक और परिचित आश्चर्य नहीं माना जा सकता। उस दृश्य का गहन सांस्कृतिक सम्बन्ध भारतीय जनजीवन से अबतक बना हुआ है। कतिपय भारतीय एवं पाश्चात्त्य विद्वान् शिव को आर्येतर देवता मानते हैं। किन्तु, शिव-पार्वती-विवाह की इस मूर्त्ति पर आर्य-विवाह-पद्धति की छाप स्पष्ट है। सच तो यह है कि उक्त विवाह-पद्धति आज भी हमारे यहाँ प्रचलित है। आज भी हिन्दू-परिवार में विवाह की वेदी पर कन्यादान के लिए कन्या के पिता, वर-वधू के अतिरिक्त साक्षी के रूप में मंत्र द्वारा वरण किये हुए ब्रह्मा और विष्णु के प्रतीक अग्नि उपस्थित रहते हैं। विवाहानन्तर वर-वधू के मंगलमय भविष्य के लिए दूर्वाक्षत द्वारा आशीर्वाद की परम्परा आज भी बनी हुई है।

उक्त मूर्त्ति में शिव के वाम भाग में ब्रह्मा मुख्य साक्षी के रूप में उपस्थित हैं। पार्श्व में विष्णु खड़े दिखाई देते हैं। उनके हाथ में कमल का एक फूल है, जो मंगल कामना का प्रतीक है। भारतीय पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों में शुभ अवसरों पर गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर और देव-देवियों द्वारा पुष्पवृष्टि के पर्याप्त वर्णन मिलते हैं। आकाश में उड्डीन मिथुन-मूर्त्तियों के द्वारा कलाकार ने शायद इसी परम्परा की पुष्टि की है। कौन जाने, इसके खण्डित भाग में कुमारसम्भव में निम्नांकित भाव मूर्त्त किये गये हों :

उपाददे तस्य सहस्ररश्मिस्त्वष्ट्रा नवं निर्मितमातपत्रम् ।
स तद्दुकूलादविदूरमौलिर्बभौ पतद्गङ्ग इवोत्तमाङ्गे ।।

—कुमारसम्भव, ७।४१।

तत्काल सूर्य ने विश्वकर्मा के हाथ का बना नया छत्र लेकर शिवजी के ऊपर लगा दिया। उस समय शिवजी के सिर के पास छत्र से लटका हुआ कपड़ा ऐसा दीख रहा था, मानों उनके सिर पर गंगाजी की धारा गिर रही हो :

मूर्ते च गङ्गायमुने तदानीं सचामरे देवमसेविषाताम् ।
समुद्रगा रूपविपर्ययेऽपि सहंसपाते इव लक्ष्यमाणे ॥

—कुमारसम्भव, ७।४२।

गंगा और भी मूर्त्तरूप में प्रकट होकर महादेवजी पर चँवर डुलाने लगीं। वे चँवर ऐसे दीखते थे, मानों हंस उड़ते हों।

आर्य-विवाह की शास्त्रोक्त परम्परा के अनुकूल ही विवाह के समय पार्वती शिव के दक्षिण-पार्श्व में दिखाई देती हैं। विवाहानन्तर उसे वर के वाम भाग में स्थान दिया जाता है और तभी वह 'वामांगी' अभिधान से अभिहित होती है।

शिव-पार्वती-विवाह की उक्त मूर्त्ति को देखने से यह परिलक्षित होता है कि मूर्त्ति में विवाहानन्तर सप्तपदी के समय का दृश्य खचित किया गया है; क्योंकि शिव-पार्वती खड़े हैं। विवाह काल में वर-वधू अन्यथा खड़े नहीं रहते। सप्तपदी के समय एक स्थान पर आकर वधू का वर के दक्षिण भाग में चला जाना स्वाभाविक है। कुमारसम्भव में सप्तपदी के इस दृश्य का बड़ा ही उदात्त वर्णन आया है :

प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे ।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्त्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम् ॥

—कुमारसम्भव, ७।७९।

जलती हुई अग्नि का फेरा देते समय पार्वती और शंकरजी इस प्रकार शोभित हुए, जैसे रात और दिन दोनों मिलकर सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा कर रहे हों।

सा लाजधूमाञ्जलिमिष्टगन्धं गुरूपदेशाद्वदनं निनाय ।
कपोलसंसर्पिशिखः स तस्या मुहुर्त्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे ॥

—कुमारसम्भव, ७।८१।

पुरोहित के कथनानुसार पार्वतीजी ने उस होम से उठे हुए सुगन्धित धुएँ को अपने हाथ की अंजली से लेकर कपोलों पर लगाया। उनके गालों के पास पहुँचकर वह धुआँ क्षण-भर के लिए उनके कानों का कर्णफूल बन गया।

सप्तपदी के पश्चात् आर्य-विवाह-परम्परा में उस सम्बन्ध को ध्रुव-सा स्थिर बनाने के लिए आकाश-स्थित ध्रुव को दिखाने की विधि आज भी प्रचलित है। इसका बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन कुमारसम्भव में आया है :

ध्रुवेण भर्त्रा ध्रुवदर्शनाय प्रयुज्यमाना प्रियदर्शनेन ।
सा दृष्ट इत्याननमुन्नमय्य ह्रीसन्नकण्ठी कथमप्युवाच ॥

—कुमारसम्भव, ७।८५।

जब शंकरजी ने कहा—ध्रुव की ओर देखो, तो पार्वतीजी ने ऊपर मुँह उठाकर

लजाते हुए किसी प्रकार इतना-भर कहा—हाँ, देख लिया। भला, जब ध्रुवेश्वर शिव को ही देख लिया तो ध्रुव को देखना बाकी रहा कहाँ ?

विवाहानन्तर देवी-देवताओं का तो कहना ही क्या, स्वयं वाग्देवी ने वर-वधू की इस जोड़ी की असाधारण रूप से, संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में प्रशंसा की है :

द्विधा प्रयुक्तेन च वाङ्मयेन सरस्वती तन्मिथुनं नुनाव।
संस्कारपूतेन वरं वरेण्यं वधूं सुखग्राह्यनिबन्धनेन॥

कुमारसम्भव, ७।९०

स्वयं देवी सरस्वतीजी संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में शिव-पार्वतीजी की स्तुति करने लगीं। संस्कृत में प्रशंसनीय वर की और सरलता से समझने योग्य प्राकृत भाषा में उन्होंने वधू की स्तुति आरम्भ कर दी।

सारे वैवाहिक कार्यक्रम समाप्त होने पर, मौका देखकर, इन्द्रादि देवगण ने भगवान् शंकर से प्रार्थना की :

देवास्तदन्ते हरमूढभार्यं किरीटबद्धाञ्जलयो निपत्य।
शापावसाने प्रतिपन्नमूर्त्तेर्ययाचिरे पंचशरस्य सेवाम्॥

कुमारसम्भव, ७।९२

विवाह-विधि समाप्त हो जाने पर इन्द्र आदि देव पाणिग्रहीता शंकरजी के पास गये और अपने किरीटयुक्त सिर पर हाथ जोड़कर कहा—आपका विवाह हो जाने से शाप भी समाप्त हो गया। अब आप आज्ञा दें तो कामदेव फिर से जी उठें और आपकी सेवा करें।

बात बड़े मौके से कही गई थी, फिर पूरी होती क्यों नहीं ? सदाशिव मुस्कुराये और बोले—अच्छा, कह दो कामदेव से कि वह अब जी भरकर हमपर अपने बाण चलाये। कालिदास ने इसे यों कहा है :

तस्यानुमेने भगवान्विमन्युर्व्यापारमात्मन्यपि सायकानाम्।
कालप्रयुक्ता खलु कार्यविद्भिर्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति॥

कुमारसम्भव, ७।९३

शिवा और शिव की ये समरस मूर्त्तियाँ जड़ नहीं, चेतना की संदेशवाहक हैं। परस्पर कर-स्पर्श के कारण निमीलित नेत्रवाली इन युगल मूर्त्तियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानों उर्वर पाषाणों में प्रणय की कलियाँ उग आई हों और चटकने की तैयारी कर रही हों। जयशंकर प्रसाद के शब्दों में :

"समरस थे, जड़ चेतन, सुन्दर साकार बना था;
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखंड घना था॥"

तभी तो स्वयं विष्णुप्रिया लक्ष्मी ने इस विवाहोत्सव में नालदण्ड-युक्त कमल-रूप श्वेतछत्र धारण किया था, जिसके पत्तों की नोकों पर लटकते मोती-बिन्दु अब टपके तब टपके-से सुशोभित थे :

पत्रान्तलग्नैर्जलबिन्दुजालैराकृष्टमुक्ताफलजालशोभम् ।
तयोरुपर्यायतनालदण्डमाधत्त लक्ष्मीः कमलातपत्रम् ॥

कुमारसम्भव, ७।८९

इस विवाह-पटल की शोभा सचमुच अवर्णनीय है। कविगुरु कालिदास को भी इसके वर्णन में अपनी असमर्थता व्यक्त करनी पड़ी। विवाहकाल में उमा-महेश्वर के स्मरण-मात्र से ही किसी भी लौकिक वर-वधू की शोभा अगणित हो जाती है। फिर, जहाँ स्वयं जगन्माता और जगत्पिता का ही विवाह हो रहा हो, उसकी शोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता है ?

प्रयुक्तपाणिग्रहणं यदन्यद् वधूवरं पुष्यति कान्तिमग्र्याम् ।
सान्निध्ययोगादनयोस्तदानीं किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य ॥

कुमारसम्भव, ७।७८

एक धारणा यह भी होती है कि सम्भव है कि विवाहानन्तर शंकर जब इन्द्रादि देवों से विदा लेकर अपनी प्रिया पार्वती का कर कमल पकड़े कौतुकगृह को प्रस्थानोद्यत हुए, उस समय की मुद्रा का भी यह एक दृश्य हो कुमारसम्भव के निम्नांकित श्लोक में वर्णित दृश्य से इस पटल का सहज सामंजस्य हो जाता है :

अथ विबुधगणांस्तानिन्दुमौलिर्विसृज्य
क्षितिधरपतिकन्यामाददानः करेण ।
कनककलशयुक्तं भक्तिशोभासनाथं
क्षितिविरचितशय्यं कौतुकागारमागात् ॥

कुमारसम्भव, ७।९४

गंगावतरण

प्रस्तुत पटल (फलक ३०) में पूर्वकाल में राजा सगर के ६० हजार पुत्रों की समस्त पाप-राशि का विनाश करने के लिए ब्रह्मधाम से पतितपावनी गंगा के इस धराधाम पर पहले-पहल अवतीर्ण होने की बड़ी ही मनोमोहक झाँकी उतारी गई है। इस पटल की चौड़ाई १३ फुट और ऊँचाई १७ फुट से भी कुछ अधिक है। नीचे की आधार-शिला की ऊँचाई सतह से लगभग ढाई फुट है। शिव की मुख्य मूर्त्ति १६ फुट ऊँची है और

पार्वती की सवा बारह फुट। यहाँ शिव चतुर्भुज हैं। ऋग्वेद के एक सूत्र के अनुसार दिशाएँ ही इनकी बाहें हैं :

यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू [१]

विष्णुपुराण में दिये गये शिव के वर्णन में इसे और भी स्पष्ट कर दिया गया है :

दिशश्चतस्रोऽव्यय बाहवस्ते। [२]

यहाँ शिव की कल्पना सर्वव्यापी रूप में की गई है। इस सन्दर्भ में व्योम की विस्तृत नीलिमा ही इनके केश हैं और इसीलिए इनका एक नाम व्योमकेश भी है। विस्तृत नील नभोमण्डल का सर्वाधिक नयनाभिराम रत्न चन्द्रमा ही इनका शिरोभूषण है। इस कारण इनका नाम चन्द्रशेखर है। इस प्रकाण्ड मूर्त्ति के सामनेवाले दाहिने हाथ में अभय है अर्थात् वह अभय-मुद्रा में उठा हुआ है। पीछेवाले दाहिने हाथ से वे अपना जटाजूट पकड़े हुए हैं, जिससे एक स्त्री-मूर्त्ति निस्सृत होती दीख पड़ती है। सम्प्रति इस स्त्री-मूर्त्ति के सिर्फ पाँव ही दृष्टिगोचर हैं। स्पष्टतः यह धराधाम पर विन्दुसरोवर में व्योमकेश के जटाजाल से प्रथम-प्रथम अवतीर्ण होती हुई गंगा का दृश्य है। इसे देखकर राजा सगर के ६० हजार पुत्रों की उत्पत्ति, इन्द्र द्वारा राजा के यज्ञ-अश्व के अपहरण, उसे खोजने के क्रम में पृथ्वी को खोदते हुए सगर-पुत्रों के मुनिश्रेष्ठ कपिल के पास पहुँचने, उनके रोष से जलकर भस्म होने तथा उनके पौत्र भगीरथ की तपस्या से पतितोद्धारिणी गंगा के भूतल पर अवतीर्ण होकर भगीरथ के पितरों का उद्धार करने की सारी कथा मानस-पटल पर कौंध गई। यह कौतूहलपूर्ण कथा आदिकाव्य में विश्वामित्र ने स्वयं श्रीराम को सुनाई है। भगीरथ की तपस्या से जब ब्रह्मा ने हिमालय की ज्येष्ठ पुत्री गंगा को ब्रह्मलोक से भूतल पर अवतीर्ण होने को कहा, बो एक समस्या यह उठ खड़ी हुई कि गगा के गिरने का सीधा वेग पृथ्वी तो नहीं सह सकेगी। फिर क्या हो? शंकर के सिवा और कोई ऐसा समर्थ नहीं दीख पड़ा, जो बीच में गंगा के वेग को धारण कर सके।[३] अतः भगीरथ ने भगवान् शंकर की उपासना की। पशुपति प्रसन्न हुए और कहा—मैं गिरिराजकुमारी गंगा को अपने मस्तक पर धारण करूँगा।[४] त्रिपथगा को ब्रह्मलोक से भूतल पर अवतीर्ण होने में स्वभावतः संकोच था। शिव की स्वस्ति से उन्होंने रोष में आकर अपने वेग को दुस्सह बनाकर सोचा—

---

१. ऋग्वेद, १०।१८१।२

२. विष्णुपुराण (जीवानन्द, कलकत्ता), ५।९।२६।

३. गङ्गायाः पतनं राजन् पृथिवी न सहिष्यते।
तां वै धारयितुं राजन् नान्यं पश्यामि शूलिनः॥
—वा० रा०; १।४२।२४

४. प्रीतस्तेऽहं नरश्रेष्ठ करिष्यामि तव प्रियम्।
शिरसा धारयिष्यामि शैलराजसुतामहम्॥
—वा० रा०, १।४३।३

मैं अपने प्रखर प्रवाह के साथ शंकर को भी लिये-दिये पाताल में घुस जाऊँगी।[१] उनके इस अहंकार को जानकर त्रिलोचन भी कुपित हो उठे, और उन्होंने गंगा को उस समय अदृश्य ही कर देने का विचार किया।[२] गंगा और शिव के इन स्पर्द्धापूर्ण विचारों का बड़ा ही कवित्वमय वर्णन जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने अपने 'गंगावतरण' नामक काव्य में किया है—

गंग कह्यो उर भरि उमंग तौ गंग सही में।
निज तरंग-बल जौ हर-गिरि हर-संग मही में ॥
लै सवेग-विक्रम पताल-पुरि तुरत सिधाऊँ।
ब्रह्म-लोक कौ बहुरि पलटि कंदुक-इव आऊँ ॥
सिव सुजान यह जानि तानि भौंहिनि मन भाषे।
बाढ़ी-गंग-उमंग-भंग पर उर अभिलाषे ॥
भए सँभरि सन्नद्ध भंग कैं रंग रँगाए।
अति दृढ़-दीरघ सृंग देखि तापर चलि आए।[३]

इस अद्भुत दृश्य को देखने के लिए देवगण विविध यानों पर चढ़कर अपने-अपने आवासों से मंगल-पाठ करते हुए आगे बढ़-बढ़कर निर्निमेष नेत्रों से इस नयनीय सुख का उपभोग करने लगे।

कढ़ि-कढ़ि-गृह सों बिबुध बिबिध जाननि पर चढ़ि-चढ़ि।
पढ़ि-पढ़ि मंगल-पाठ लखत कौतुक कछु बढ़ि-बढ़ि ॥[४]

इधर वेगवती गंगा अपनी उत्तुंग तरंगों के साथ उछलती, पथ में पड़ी रुकावटों को दूर करती, ढलती-ढुलकती, कहीं धँसती और कहीं दौड़ती, लहराती-हहराती जब कंदर्प-दर्प-विमोचन के सम्मुख आई तब क्षण-क्षण नवीन होती हर की उस रमणीय मूर्त्ति को देखकर वह सारी सुध-बुध खो बैठी। रत्नाकर के शब्दों में —

भई थकित छबि छकित हेरि हर-रूप मनोहर।
ह्‌वै आनहि के प्रान रहे तन धरे धरोहर ॥

---

१. अचिन्तयच्च सा देवी गंगा परमदुर्धरा।
विशाम्यहं हि पातालं स्रोतसा गृह्य शंकरम् ॥
—वा० रा०, १।४३।५

२. तस्यावलेपनं ज्ञात्वा क्रुद्धस्तु भगवान् हरः।
तिरोभावयितु बुद्धिं चक्रे त्रिनयनस्तदा ॥
—वा० रा०, १।४३।६

३. गोलोकवासी श्रीजगन्नाथ दास 'रत्नाकर' द्वारा रचित गंगावतरण।

४. वही, १८ का पूर्वार्द्ध।

भयो कोप कौ लोप चोप औरे उमगाई।
चित चिकनाई चढ़ी-कढ़ी सब रोष-रुखाई ।।
छोभ-छलक ह्वै गई प्रेम की पुलक अंग में।
थहरन के ढरि ढंग परे उछरति तरंग में ।।
भयो वेग उद्वेग पेंग छाती पर धरकी।
हरहरान धुनि बिघटि सुरट उघटी हर-हर की ।।
भयो हुतो भ्रू-भंग-भाव जो भव निदरन को।
तामैं पलटि प्रभाव पर्‌यों हिय हेरि हरन को ।।
प्रगटत सोइ अनुभाव भाव औरे सुखकारी।
ह्वै थाई उतसाह भयौ रति कौ सचारी ।।

इस तरह रति के संचारी भाव के साथ लजाती, सकुचाती और शिव के संग-सुख से अपने में फूली न समाती हुई गंगा शिव के जटाजूट के गहन विपिन में सिमटकर समा गई।

सकुचति ऐंचति अंग अंग सुख-संग लजानी।
जटा-जूट हिम-कूट सघन बन सिमिटि समानी ।।[२]

वाल्मीकीय रामायण के निम्नांकित श्लोकों से भी भगवान् शिव के जटा-जाल में गंगा के उलझ जाने और एक लम्बी अवधि तक उसमें भटकते रहने का उल्लेख आया है ।[3] इस तरह गंगा और शिव के बीच जो पारस्परिक प्रीति जगी, उसका बड़ा ही ललित बर्णन रत्नाकर ने किया है —

पाइ ईस को सीस-परस आनंद अधिकायो।
सोई सुभ सुखद निवास बास करिबं मन ठायो ।।
सीत सरस संपर्क लहत संकरहु लुभाने।
करि राखी निज अग गंग कैं रग भुलाने ।।

---

१. वही, ७।३६, ३७, ३८

२. गोलोकवासी श्रीजगन्नाथ दास 'रत्नाकर' द्वारा रचित 'गंगावतरण', ३९ का उत्तरार्द्ध।

३. सा तस्मिन् पतिता दृप्ता पुण्ये रुद्रस्य मूर्धनि ।।
हिमवत्प्रतिमे राम जटामण्डलगह्वरे।
सा कथंचिन्महीं गन्तुं नाशकद्यत्नमास्थिता ।।
नैव सा निर्गमं लेभे जटामण्डलमन्ततः।
तत्रैवाबभ्रमद् देवी संवत्सरगणान् बहून् ।।
—वा० रा०, ४३।७ उत्तरार्द्ध, ८ और ९

बिचरन लागी गंग जटा-गहवर-बन-बीथिन।
लहति संभु-सामीप्य-परम-सुख दिननि-निसीथिनि ।।
इहि बिधि आनंद में अनेक बीते संबत्सर।
छोड़ल छुटत न बनत ठनत नव नेह परस्पर ।।[१]

अन्ततोगत्वा भगीरथ के अनुरोध पर महादेव ने गंगा को बिन्दु सरोवर में ले जाकर छोड़ दिया। वहाँ से छूटते ही उनकी सात धाराएँ हो गईं। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी—ये तीन मंगलमयी धाराएँ पूर्व दिशा को गईं, तथा सुसुक्षा, सीता और महानदी सिन्धु पश्चिम की ओर प्रवाहित हुईं। सातवीं धारा भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे चली। संयोगवश, मार्ग में जह्नु ऋषि यज्ञ कर रहे थे। गंगा को तो उनका पता था नहीं। अतः ये अपने जल-प्रवाह से उनके यज्ञ-मंडप को बहा ले गईं। इससे मुनि स्वभावतः कुपित हो उठे, और अपने पराक्रम से उन्होंने गंगा की उस धारा कीसमस्त जलराशि को पी डाला। यह संसार के लिए एक बड़ी अद्भुत बात हुई। सभी देवता, गन्धर्व आदि विस्मित होकर महात्मा जह्नु की स्तुति करने लगे। अन्त में, जह्नु प्रसन्न हुए, और उन्होंने अपने कानों से गंगा को पुनः प्रकट कर दिया। तभी से गंगा जह्नु की पुत्री एवं जाह्नवी कहलाती है।[२] यही जाह्नवी भगीरथ के रथ का अनुसरण करती हुई समुद्र तक जा पहुँचीं, और फिर भगीरथ के पितरों के उद्धार के लिए रसातल में गईं और वहाँ सगर-पुत्रों की भस्मराशि को आप्लावित कर उन राजकुमारों को निष्पाप बना दिया।

जो हो, इस चतुर्भुजी मूर्त्ति की पीछेवाली बाईं भुजा कलाई पर से टूटी है, पर उसकी अदा से सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह पार्वती के चिबुक की ओर निर्देशित थी। सामनेवाली बाईं भुजा एक पिशाच या पार्षद् के सिर पर आरोपित है, जो उसके गुरुतर भार को वहन करने में असमर्थ होकर तिलमिलाया-सा दीखता है। शिव के गले में हार, बाँहों और कलाइयों पर अलंकरण और कानों में कुण्डल सुशोभित हैं। उनकी कमर के चतुर्दिक् एक गुम्फित करधनी है, जिससे उनका बाघम्बर नीचे लटकता है और बाईं जाँघ के ऊपर बँधा है। उनके बायें कंधे से यज्ञोपवीत नीचे लटकता है जो दाहिने भाग तक जाता है। उनके इस उदात्त रूप का उल्लेख रत्नाकर ने इस प्रकार किया है —

बल बिक्रम पौरुष अपार दरसत अँग अंग में।
बीर रौद्र दोउ रस उदार झलकत रँग-रँग तें ।।[३]

(३) गोलोकवासी श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' रचित 'गंगावतरण' के १७वें अध्याय का पद ४० और ४१ देखें।

(१) ततस्तुष्टो महातेजाः श्रोत्राभ्यामसृजत् प्रभुः।
तस्माज्जह्नुसुता गंगा प्रोच्यते जाह्नवीति च ।।
—वा० रा०, १।४३।३८

(२) गोलोकवासी श्रीजगन्नाथ दास 'रत्नाकर' द्वारा रचित 'गंगावतरण' के सातवें सर्ग के १४वें पद का पूर्वार्द्ध देखें।

भगीरथ की स्तुति से प्रसन्न होकर शिव ने गंगा को प्रबोधित किया—तुम सतत मेरे सिर पर निवास करोगी, पर साथ ही मेरे जटा-जूट से नित तुम्हारी अखण्ड धाराएँ निस्सृत होंगी, जिनसे मात्र सगर-पुत्रों का ही उद्धार नहीं होगा, बल्कि सारी वसुधा भी रसवती सिद्ध होगी।

यह कहि कर गहि जटा सटा लों सूति सटाई।
बिंदु सरोवर ओर छोर ताकी लटकाई॥
तातें निकसि अपार धार परिपूरि सरोबर।
चली उबरि ढरि करि उदोत षट सोत धरा पर॥[1]

गंगा को इस तरह सर्वदा के लिए शिव के सिर पर स्थान मिलने के कारण पार्वती स्वभावत खिन्न हुईं। इसका बड़ा ही कवित्वपूर्ण वर्णन पण्डितराज जगन्नाथ ने किया है—

नृणामीक्षामात्रादपि परिहरन्त्या भवभयं
शिवायास्ते मूर्त्तेः इह बहुमान निगदतु।
अमर्षम्लानायाः परममनुरोधं गिरिभुवो
विहाय श्रीकण्ठः शिरसि नियतं धारयति याम्॥[2]

हे गंगे! कल्याणकारिणी तेरी मूर्त्ति की (गंगा नदी की) महिमा का वर्णन इस संसार में कौन कर सकता है, जिसके दर्शन से ही मनुष्य भवबाधा से रहित हो जाते हैं और जिसको श्रीशंकरजी क्रोध से म्लानमुख पार्वतीजी के अत्यन्त अनुरोध को भी न मानकर हमेशा के लिए अपने सिर पर धारण किये हुए हैं।

इन छह धाराओं के अतिरिक्त जो सातवीं धारा भगीरथ के साथ गई, वह आगे चलकर जाह्नवी नाम से विख्यात हुई, और उसी ने सगर के पुत्रों को गति दी। पण्डित राज जगन्नाथ के शब्दों में—

स्वभावस्वच्छानां सहजशिशिराणामयमपा—
मपारस्ते मातर्जयति महिमा कोऽपि जगति।
मुदा यं गायन्ति द्युतलमनवद्यद्युतिभृतः
समासाद्याद्यापि स्फुटपुलकसान्द्राः सगरजाः॥[3]

हे मातः! स्वभाव से ही निर्मल और शीतल तेरे जल की यह अपार (असीम) विलक्षण महिमा संसार में विख्यात है। आपकी इस महिमा का, आज स्वर्ग में बैठे हुए प्रशंसनीय कान्तिवाले सगर के साठ हजार पुत्र अत्यन्त रोमांचित होकर बड़े हर्ष से गान कर रहे हैं।

---

१. गोलोकवासी श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर' द्वारा रचित 'गंगावतरण' के अष्टम सर्ग का १२वाँ पद।

२. पण्डितराज जगन्नाथ-विरचित 'गंगा लहरी' का श्लोक १२ देखें।

३. वही, श्लोक १६ देखें।

शिव के वामांग में पार्वती की जो मूर्त्ति है, उसमें भृकुटियों के ऊपर तक सिर मुकुटमण्डित है, जिसके नीचे से बालों की पेंचदार लटें नीचे झूलती हैं। कानों में कर्णफूल, गले में हार, बाँहों, घुटनों और पहुँचियों में समीचीन अलंकरण और कमर में नक्काशीदार करधनी हैं। उनकी बाईं भुजा नीचे लटक रही है और दाहिनी कुछ तिर्यक्-भाव से ऊपर उठी है। पर, कलाई के ऊपर का उसका भाग टूटा हुआ है। पार्वती के कन्धे के निकट गरुडगामी विष्णु की मूर्त्ति है। गरुड के गले में एक साँप है। वह उरगारि भी तो है। शिव के दाहिने कन्धे के निकट ब्रह्मा पद्मासन पर आसीन हैं, जिसे राजहंस वहन कर रहे हैं। उनकी एक दाहिनी भुजा में एक पद्म है। दाहिनी ओर शिव के पादतल में उनके सम्मुख भगीरथ बैठे हैं। तपस्या के कारण वे भी जटाधारी हो गये हैं। उनकी भुजाएँ हैं तो टूटी हुई, पर जो कुछ अवशिष्ट है उससे सहज अनुमान लगाया आ सकता है कि उनके वक्षस्थल पर देवाधिदेव की स्तुति में अंजलिबद्ध मुद्रा में संपुटित थे। शिव और पार्वती के बीच एक पिशाच्र या पार्षद् की जूड़ादार मूर्त्ति है। उसके बायें हाथ में चँवर और दाहिने हाथ में एक साँप है। पार्वती की बाईं ओर कुछ इसी तरह की दूसरी पार्षद-मूर्त्ति है। शिव के सिर के ऊपर एक तीन सिरोंवाली स्त्री-मूर्त्ति है। हीरानन्द शास्त्री के अनुसार यह गंगा-यमुना-सरस्वती के त्रिवेणी-संगम का द्योतक है। यह निर्वचन जँचता नहीं है; क्योंकि त्रिवेणी का वहाँ कोई औचित्य ही नहीं दीखता। ब्रह्मा के ऊपर शिव के समकक्ष चार देवों और दो देवियों की स्वर्गिक मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इसके आमने-सामने पार्वती की मूर्त्ति के ऊपर इसी तरह की छह और मूर्त्तियाँ हैं। ये सारी नैसर्गिक मूर्त्तियाँ प्रचलित परिपाटी के अनुसार उड्डीयमान दिखलाई गई हैं। वाल्मीकीय रामायण में बिन्दुसरोवर से निकली हुई सप्त धाराओं में प्रवाहित होती गंगा के वर्णन में भी ऐसे दृश्यों का उल्लेख आया है

ततो देवर्षिगन्धर्वा यक्षसिद्धगणास्तथा ॥
व्यलोकयन्त ते तत्र गगनाद् गां गतां तदा ।
विमानैर्नगराकारैर्हयैर्गजवरैस्तदा ॥
पारिप्लवगताश्चापि देवतास्तत्र विष्ठिताः ।
तदद्भुतमिमं लोके गंगावतरमुत्तमम् ॥
दिदृक्षवो देवगणाः समीयुरमितौजसः ।[१]
सम्पतद्भिः सुरगणैस्तेषां चाभरणौजसा ॥
शतादित्यमिवाभाति गगनं गततोयदम् ।[२]

—तदनन्तर, देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष और सिद्धगण अवतीर्ण हुई गंगा की शोभा निहारने लगे। इस अद्भुत दृश्य को देकर देवगण आश्चर्यचकित थे। गंगावतरण के इस उत्तम दृश्य को देखने के लिए अमित तेजस्वी देवताओं का समूह वहाँ जुटा हुआ था। इस

१. वा० रा०, १।४३।१७ का उत्तरार्द्ध १८, १९ और २० का पूर्वार्द्ध।
२. वा० रा०, २० का उत्तरार्द्ध और २१ का पूर्वार्द्ध।

तरह तीव्र गति से आते हुए देवताओं तथा उनके दिव्य आभूषणों के प्रकाश से वहाँ मेघ-रहित निर्मल आकाश इस तरह प्रकाशित हो उठा था, मानों वहाँ सैकड़ों सूर्य उगे हुए हों।

यदि इस प्रकोष्ठ की चित्रकारी अक्षुण्ण रही होती तो शायद आदिकाव्य में वर्णित उक्त सारे मनोमोहक दृश्य आज भी वहाँ देखने को मिल जाते।

वाराहपुराणान्तर्गत गंगास्तव में गंगा को धर्मद्रव अथवा धर्म का तरल रूप कहा गया है।[1] पुराकाल में ब्रह्मा ने तरल रूप में धर्म का निर्माण किया और वही गंगा नाम से विश्रुत हुआ। तरल रूप में धर्म ही अमृत-तत्त्व है। यह विष्णु के चरण से द्रवित हुआ। फिर ब्रह्मा के कमण्डल और शिव की जटा में रहा। डॉ० जनार्दन मिश्र द्वारा प्रतिपादित इसके रूप-भेदों के अनुसार बुद्ध के अमृत-कलश और शक्ति के कपाल-पात्र तथा उपनिषत् की ब्रह्मविद्या में इसका निवास है।[2]

त्रिमूर्त्ति

शिवा-महेश्वर की इस प्रकाण्ड त्रिमूर्त्ति (फलक २६) में भारतीय कला के प्रतीकात्मक रूप की शायद सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई है। इस आध्यात्मिक त्रिमूर्त्ति के मुखमण्डल पर बड़ी प्रशान्त गम्भीरता है। इसका विशाल जटाजूट सुन्दर मुकुट का काम देता है। बालों की पेचदार लटें और आभूषणादि बड़े ही सुखद और सुन्दर हैं। उस समय की अन्य मूर्त्तियों के सदृश इस त्रिमूर्त्ति के हर मुख के नीचे का होठ बहुत मोटा और निकला हुआ है। राधाकमल मुखर्जी के अनुसार इस प्रतिमा का मध्य मुख स्वयंप्रभान्वित, निरपेक्ष और पारलौकिक ततपुरुष[3] सदाशिव का है; दायाँ मुख उग्र, भृकुटी ताने हुए तथा वैराग्य और विनाश की भावना से उद्धत अघोरभैरव[4] का है, और बायाँ मुख है शिव की संगिनी, परम सौन्दर्यमयी, आभूषणालंकृता उमा का।

---

१. वाराहपुराण, गंगास्तव, पृ० २

२. भारतीय प्रतीक-विद्या, पृ० ७७

३. शिवकवचस्तोत्र में इनके रूपों का ध्यान इस प्रकार किया गया है—

प्रदीप्त विद्युत्कनकावभासो विद्यावराभीतिकुठारपाणिः।
चतुर्मुखस्ततपुरुषस्त्रिनेत्रः प्राच्यांस्थितं रक्षतु मामजस्रम्॥

अर्थात्

चमकती हुई बिजली जैसे स्वर्ण वर्णवाले, हाथों में विद्या (वेद), वर, अभय और परशुवाले, चार मुख और तीन नेत्रवाले ततपुरुष, जब मैं पूर्व दिशा में रहूँ, तो मेरी रक्षा करें।

४. कुठारवेदांकुशपाशशूलकपालढक्काक्षगुणान् दधानः।
चतुर्मुखो नीलरुचिस्त्रिनेत्रः पायादघोरो दिशि दक्षिणस्याम्॥

अर्थात्

परशु, वेद, अंकुश, पाश, शूल, कपाल, ढक्का और अक्ष-सूत्र को धारण किये हुए चार मुख, तीन नेत्र और नील वर्णवाले अघोर शिव दक्षिण ओर मेरी रक्षा करें।

इस प्रकाण्ड त्रिमूर्त्ति का प्रकोष्ठ पहाड़ी की कुक्षि कोड़कर बनाया गया है। उसके अगल-बगल दो द्वारपाल कर्त्तव्यनिष्ठ सन्नद्ध हैं। दाहिनी ओर के द्वारपाल की मूर्त्ति १३½ फुट ऊँची है, पर काफी क्षतिग्रस्त हो चुकी है, और बाईं ओर की मूर्त्ति पौने तेरह फुट ऊँची। दोनों की संगतराशी गजब की है। चौकसीवाली उनकी मुद्रा बड़ी ही प्रभावोत्पादक है। उनके शिरस्त्राण की गढ़न भी निराली है। उनके शिरोभूषणों में दोनों ओर लगे चाँद ने वहाँ सचमुच चार चाँद लगा रखे हैं। बाईं ओर के द्वारपाल की बाईं भुजा एक भृत्य के सिर पर आरोपित है। उसके कृत्रिम केश, गले का हार और कमरकस बरबस दर्शकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। दूसरी ओर के द्वारपाल का भृत्य अर्धनम्र मुद्रा में खड़ा है। उसके होठ मोटे, आँखें विस्तारित और जीभ बाहर निकली हुई है।

इस प्रकोष्ठ के सामने आते ही दर्शकों को सतह से लगभग पौने तीन फुट ऊँची प्रतिष्ठा-वेदी पर विराजमान पौने अठारह फुट से भी कुछ अधिक ऊँची त्रिमूर्त्ति की प्रकाण्डता पराभूत कर देती है। इसके मुखों की आकृतियाँ और मुद्राएँ पृथक्-पृथक् हैं और उनके पार्थक्य में एक अद्‌भुत् संतुलन है। हीरानन्द शास्त्री के अनुसार, सामने का मुख सदाशिव के सृष्टिकर्त्ता रूप का है, जिसके नीचे का होठ मोटा बना हुआ है और वक्षःस्थल पर कई हार सुशोभित हैं। सामने का दाहिना हाथ बुरी तरह क्षतिग्रस्त है। सिर्फ कलाई पर एक कंगन दीखता है। सामने के दाहिने हाथ में एक मातुलुंग है। सिर जटा-मुकुट-मण्डित है। उसकी दाहिनी ओर चन्द्रकला विराजती है। जटा-जूट के सामनेवाले भाग में तीन नगों का एक सिरपेच (टिआरा) है। उनमें से एक तो सीधे ललाट पर है और बाकी दो कानों पर जड़े हैं। बीच के नग का रूपांकन बड़ा ही ललित है और गढ़न भी चित्ताकर्षक। कानों के मकराकृत कुण्डल भी बड़े आह्लादकारी हैं।

दायाँ मुख संहारकर्त्ता रुद्र का है। यह मुखाकृति सचमुच भयंकर है। आँखें चढ़ी हुई हैं। ललाट कुछ ऐसा उद्धत है, मानों त्रिलोचन की तीसरी आँख अब खुलने को ही है। घुँघराली मूँछों और श्मश्रु से इसकी रौद्रता और भी बढ़ गई है। जटाजाल में अनेकों सर्प लुकते-छिपते-से दीख पड़ते हैं। परिकर में औरों के साथ मुण्डमाल और फण काढ़े बृहदाकार नागराज भी हैं। वक्षःस्थल पर उठे हुए दाहिने हाथ की कलाई में एक नाग कुण्डलित है।

हीरानन्द शास्त्री के अनुसार बायाँ मुख शिव के सृष्टिपाल विष्णु-रूप का है। इस मुख पर जो सौष्ठव और शान्ति विराजती है, शायद उसीसे राधाकमल मुखर्जी को इसमें शिव की अर्द्धांगिनी शक्ति का बोध हुआ। इसके कानों के सुरुचिपूर्ण शंखनुमा अलंकरण के कुछ भाग अब टूट गये हैं। मुकुट के अन्दर से निकली पेचदार लटों में से जो चित्ताकर्षक अलंकरण झूलते हैं, उनसे भी शायद मुखर्जी को यह शक्तिस्वरूपा जँची हो। इसकी

कनपट्टी के ऊपर एक बड़ा-सा कमल-पत्र है और उसके ऊपर मध्य मुख के साथ इसके जोड़ पर एक कमल का फूल और साथ ही उसकी एक कली भी है। इसकी बाईं कलाई में और सामने के दो हाथों में कंगन अथवा चूड़ियाँ हैं और हाथ में एक पद्म-पुष्प भी।

भारतीय संस्कृति में उमा शक्ति (इनके भी हाथ में सदैव कमल रहता है), अर्थ और काम, अर्थात् सम्पत्ति, सौन्दर्य और जीवन-सौख्य की देवी हैं। अपनी उँगलियों में साँप लपेटे अघोरभैरव धर्म और मोक्ष के प्रतीक हैं। और, आत्मलीन पुरुष के लिए सर्जन और संहार—क्रिया और प्रशान्ति—का सतत गतिशील चक्र केवल क्षणिक माया है, जो जनमती और अन्य सभी मायावी आकृतियों की भाँति तत्पुरुष में ही विलीन हो जाती है। इस आध्यात्मिक त्रिमूर्त्ति के कुछ दूसरे रूपों में, प्रशान्त योगी की भाँति सदाशिव तो मध्य में ही हैं, किन्तु दाईं ओर हैं खप्पड़ से रक्तपान करते हुए महाकाल तथा बाईं ओर एक दर्पण में प्रतिविम्बित ब्रह्माण्ड के रूप में अपने सौन्दर्य का अवलोकन करती हुई महामाया।

यह त्रिमूर्त्ति-स्वरूप एक समय भारत तथा गान्धार, तुर्किस्तान और कम्बोडिया में सुपरिचित था। चीन की युन-थान गुफा में इसे पाया गया है तथा जापान की 'दाई इत्तोक्' यही है। यह शिव-त्रिमूर्त्ति भारतीय संस्कृति की विशिष्ट विषय-वस्तु का अद्वितीय और व्यापक प्रतीक है।[1]

कुछ लोग इस त्रिमूर्त्ति में भूल से महेश्वर के साथ ब्रह्मा और विष्णु का भी आरोप करते हैं। स्वयं महेश्वर 'जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे' के रूप में अवश्य प्रणम्य हैं, पर इससे इस त्रिमूर्त्ति में ब्रह्मा या विष्णु का आरोप नहीं किया जा सकता। ब्रह्मा तो मूलतः चतुरानन हैं। उनके चतुरानन के लिए यहाँ गुंजाइश कहाँ ? विष्णु का भी आरोप सही नहीं होगा; क्योंकि वे जटा-मुकुटधारी नहीं, किरीटधारी ही हो सकते हैं। साधारण तर्कबुद्धि भी बतलाती है कि इस महान् शिव-मन्दिर की प्रधान मूर्त्ति में शिव-महेश्वर को छोड़कर ब्रह्मा अथवा विष्णु की प्रधानता या समानता भी देने का कोई प्रश्न नहीं उठता।

ब्रह्मपुराण में दिये गये त्रिदेव के वर्णन से स्पष्ट होता है कि परब्रह्म की त्रिदेव के सम्मिलित रूप में मूर्त्त कल्पना ही शिवलिंग या लिंग-प्रतीक है।[2] कविकुलतिलक कालिदास ने कुमारसम्भव में तारकासुर के उत्पीड़न से त्रस्त देवगणों के उद्धार के लिए ब्रह्मा द्वारा त्रिमूर्त्ति की जो स्तुति करवाई है, उससे भी इसकी सम्पुष्टि होती है। श्लोक निम्नांकित है :

१. देखें, नवम्बर, १९६७ ई० का हिन्दी डाइजेस्ट 'नवनीत', दीपावली-कला-विशेषांक में प्रकाशित डॉ० राधाकमल मुखर्जी का 'प्रतीक और प्रतिमान'।

२. आनन्दाश्रम, पूना, शाके १८७०;१३०/७—१२।

नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥[1]
तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महिमानमुदीरयन् ।
प्रलयस्थितिसर्गाणामेकः कारणतां गतः ॥[2]

हे भगवन् ! सृष्टि के पूर्व एक रूप धारण करनेवाले, अनन्त सृष्टि-प्रवृत्तिकाल में, क्रम से सत्त्व, रज, तम गुणों के अधिष्ठाता होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिमूर्ति-रूप उपाधि को धारण करनेवाले आपको अनेक प्रणाम है ।

सृष्टि के पहले अकेले आप हरि, हर, हिरण्यगर्भ—इन तीन विशेष अवस्थाओं से अपनी शक्ति के प्रभाव को प्रकट करते हुए, संसार के संहार, पालन और सृष्टि की कारणता को प्राप्त होते हैं ।

वहीं शिव-विवाह-प्रकरण में भी ब्रह्मा और विष्णु ने सम्मिलित रूप से भी इस तथ्य की सम्पुष्टि की है :

एकैव मूर्त्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम् ।
विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद् वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ ॥[3]

एक ही मूर्त्ति सृष्टि, स्थिति और प्रलय के सम्बन्ध से ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन भागों में विभक्त हुई है । इनमें कौन बड़ा है और कौन छोटा, कहा नहीं जा सकता ।

शिवमहिम्नःस्तोत्र में इसका विवरण सरल एवं स्पष्ट रूप से दिया गया है :

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोत्पत्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥[4]

विश्व की उत्पत्ति के समय बहुल रजोगुण धारण करनेवाले भव को प्रणाम । संसार के संहार के समय प्रबल तमोगुण धारण करनेवाले हर को प्रणाम । संसार की सत्त्व-प्रधान उत्पत्ति के समय लोगों को सुख देनेवाले मृड को प्रणाम । त्रिगुणातीत माया-रहित परम ज्योतिर्मय शिव को प्रणाम ।

इसीलिए त्रिमूर्त्ति की प्रतिमा या चित्र त्रिगुणात्मक ब्रह्म की भावना के आधार पर बनाये जाते हैं ।

---

१. कुमारसम्भवम्, २।४
२. वही, २।६ ।
३. वही, ७।४४
४. डॉ० जनार्दन मिश्र-लिखित 'भारतीय प्रतीक-विद्या', पृ० ९५ ।

अर्धनारीश्वर शिव

यह मूर्त्ति (फलक २८) वामांग में नारी-अंग के लक्षणों से तथा दक्षिणांग में पुरुष-अंग के लक्षणों से युक्त है। इसकी ऊँचाई लगभग पौने सत्रह फुट है। पुरुष-भाग के चार हाथों में से सामनेवाला हाथ नन्दी पर आरोपित है। इसके गुम्फित मुकुट से दो भारी केश-पाश स्त्री-भाग के कन्धे से नीचे छहराते हैं, और दक्षिण-भाग में चन्द्रकला विराजित है। घुँघराले केशपाश की छटा बड़ी निराली है। पुरुष-भाग का दाहिना कान काफी नीचे खिंचा हुआ है, जिससे कुण्डल झूलते हैं। स्त्री-भाग में कान के ऊपरवाले भाग में भी एक आभूषण है और नीचे के भाग में हैं बालियाँ; कमर के चतुर्दिक् करधनी बँधी है, जो वाम भाग में नितम्बों तक छहराई दीखती है और उसके छोर नीचे झूलते नजर आते हैं। पुरुष-भाग की भुजाओं की बाँह पर खुले केयूर और कलाइयों में मोटे कंगन हैं। स्त्री-भाग की भुजाओं में चौड़े बाजूबन्द और कलाइयों में कंगन तथा अंगुलियों में नग जड़ी अँगूठियाँ हैं। स्त्री-भाग के पीछेवाले दो हाथ अभी साबित हैं—दाहिने में एक साँप है और बायें में एक दर्पण। रूप की कल्पना भारतीय भास्करों के लिए कोई नवीन वस्तु नहीं है। अर्धनारीश्वर-कल्पना के मूल में वस्तुतः सृष्टि-कल्पना है। शास्त्र-मत के अनुसार, शक्ति-युक्त होकर ही शिव सृष्टि-विधायक हो सकते हैं, अन्यथा शक्ति-विमुख शिव तो शव-मात्र रह जाते हैं।[१] शक्ति और शिव वस्तुतः दोनों पृथक् न होकर एक ही हैं। शक्ति शिव की सृष्टि है। श्रुति भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है—यतः प्रसूता जगतः प्रसूति-जगत्-प्रसविनी। प्रकृति परमात्मा से ही उत्पन्न है। सृष्टि—प्रक्रिया की आस्तिक धारणा के अनुसार परमात्मा ने अपने ही अर्धांग से प्रकृति या नारी को उद्भूत किया और उसके साथ रमण कर सृष्टि की रचना की।[२] इस प्रकार शिव और शक्ति की बाह्य द्वयता के बीच अद्वयस्वरूप की कल्पना की गई है तथा अभिप्रेत यह है कि समस्त भूतों में एक ही आत्मा विराजमान है। केवल हमारे दृष्टि-दोष के कारण वे अलग-अलग दिखाई देते हैं। शिव से भिन्न शक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है।[3] शिव और शक्ति वस्तुतः पुँल्लिंग और स्त्रीलिंग के प्रतीक हैं। सहजयान, ब्रज्रयान तथा अन्य अनेक साधना-पद्धतियों में विभिन्न प्रतीकों द्वारा सृष्टि-प्रक्रिया का संकेत दिया गया है। तन्त्र और योग की प्रक्रिया में सूर्य और चन्द्र के समागम को योग तथा इसके परिणाम को सृष्टि कहा गया है।[४] सूर्य का तेज या अग्नि-तत्त्व पिता का शुक्र और चन्द्रमा का

१. शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ॥ —आनन्दलहरी

२. द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजन्नसृजत् प्रभुः ॥ —मनुसंहिता

३. न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः।
अन्योन्यं च प्रवर्त्तेते अग्निधूमौ यथाग्नियौ ॥
—कौलज्ञानविवेक

४. किं च सूर्याग्निः रूपम् पितुः शुक्रं सोमरूपमथ मातूरजः।
उभयोः संयोगे पिण्डलोत्पत्तिर्भवति ॥
—हठयोगदीपिका

रस या सोमतत्त्व माता का रज है। इन्हीं के संयोग से शरीर-पिण्ड की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार बिन्दु और रज को शिव और शक्ति का प्रतीक माना गया है।[1] योगदर्शन में दक्षिण-श्वास को पिंगला और उसमें शिव का निवास तथा वाम-श्वास को इड़ा और उसमें शक्ति का निवास स्वीकार किया गया है। योगी, साधना के द्वारा, इड़ा-पिंगला को एक स्थान पर लाकर एकाकार कर देता है। शक्ति-तन्त्र भी शरीर के वाम भाग में शक्ति का और दक्षिण भाग में शिव का निवास स्वीकार करते हैं। एक ही शरीर में दोनों के निवास की मान्यता ही अर्धनारीश्वर की कल्पना का रहस्य है। सहजयानियों के अनुसार प्रत्येक नारी प्रज्ञा (शक्ति) और प्रत्येक नर उपाय (शिव) का प्रतीक है। इस प्रकार शिव और शक्ति की बाह्यद्वयता के मूल में अद्वयता के प्रतिपादक सूक्ष्म सिद्धान्त का ही स्थूल चित्रांकन उस मूर्त्ति में हुआ है। शिव की अर्धनारीश्वर-मूर्त्ति के वाम भाग में नारी-शरीर के लक्षण वस्तुतः शरीर के वाम भाग में शक्ति के निवास का या परमात्मा द्वारा अपने ही वाम भाग से नारी की उद्भावना का प्रतीक है। हमें भूलना नहीं चाहिए कि सूक्ष्म की व्यंजना के लिए स्थूल धरातल ग्रहण करना पड़ता है। शिव-शक्ति की अद्वयता के सूक्ष्म सिद्धान्त की व्यंजना ही अर्धनारीश्वर-स्वरूप की कल्पना है। इसके अतिरिक्त विधर्मा अणुओं के संयोग-संघात से सृष्टि के विकास की कल्पना में भी यह स्वीकृत है कि परस्पर भिन्न लिंगी का एक स्थल पर संयोग के विना सृष्टि की सर्जन-प्रक्रिया सम्भव नहीं है। शिव और शक्ति का एक वपु में रूपांकन भी इसी तथ्य को व्यंजित करता है।

देवाधिदेव शम्भु के पराशक्ति शिवा के साथ अर्धनारीश्वर-रूप में अवतरित होने की पौराणिक कथा भी बड़ी रोचक है। सृष्टि के आदि में जब सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा द्वारा रची हुई सारी प्रजा विस्तार को नहीं प्राप्त हुई तब वे दुःखाभिभूत होकर चिन्ता करने लगे। तभी आकाशवाणी हुई—मिथुनजा सृष्टि करो और तदनुसार वे मैथुनी सृष्टि करने का विचार करने लगे।[2] किन्तु इससे पहले नारियों के कुलों का प्रादुर्भाव हुआ तो था नहीं। अतः मैथुनी सृष्टि हो तो कैसे? इस समस्या का और कोई निदान न पाकर ब्रह्मा शम्भु की कृपा के लिए तप करने लगे। उनके तीव्र तप से आशुतोष प्रसन्न हुए और सृष्टिकर्त्ता की मनस्कामना पूरी करने के लिए पूर्ण सच्चिदानन्द की कामदा मूर्त्ति में प्रविष्ट होकर अर्धनारीश्वर के रूप में प्रकट हुए। इस तरह स्वयं शंकर

---

१. 'बिन्दुः शिवो रजः शक्तिर्बिन्दुरिन्दुरजो रविः'—गोरक्ष-सिद्धान्त-संग्रह।

२. यदा सृष्टाः प्रजाः सर्वाः न व्यवर्द्धत वेधसा।
तदा चिन्ताकुलोऽभूत्स तेन दुःखेन दुःखितः॥
नभोवाणी तदाभूद्धे सृष्टिं मिथुनजां कुरु।
तच्छ्रुत्वा मैथुनीं सृष्टिं ब्रह्मा कर्त्तुममन्यत॥

—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता, ३।३।२-३

को परम शक्ति के साथ प्रकट होते देखकर ब्रह्मा ने हाथ जोड़कर स्तुति से उनकी तुष्टि की ।[१]

अन्तर्यामी शंकर यह जानते थे कि सृष्टिकर्त्ता ने प्रजा की वृद्धि के लिए ही दुष्कर तप किया है। इसलिए प्रसन्न होकर उनके मनोरथ को पूरा करने के लिए ही वे नर-नारी के रूप में प्रकट हुए और मैथुनी सृष्टि की कार्यान्विति के लिए उन्होंने सृष्टिकर्त्ता के सामने ही अपने अर्द्ध अंग से देवी शिवा को अलग कर दिया ।[२] इस तरह भगवान् से पृथक् होकर प्रकट हुई परम शक्ति को देखकर चतुरानन अंजलिबद्ध हो विनीत चित्त से प्रार्थना करने लगे ।[३] उस क्रम में उनकी स्पष्टोक्ति हुई—मैंने देवता आदि समस्त प्रजा की मानसिक सृष्टि की ; परन्तु बारम्बार रचना करने पर भी उनकी वृद्धि नहीं हो रही है ।[४] अतः अब मैं स्त्री-पुरुष के समागम से उत्पन्न होनेवाली सृष्टि का निर्माण कर सारी प्रजाओं की वृद्धि करना चाहता हूँ ।[५] किन्तु अबतक आपसे अक्षय नारियों का अनन्त कुल प्रकट हुआ नहीं और इस कारण अभीतक मुझमें नारियों के कुल रचने की शक्ति जगी नहीं ।[६] चूँकि सकल शक्तियों का उद्गम-स्रोत आप ही हैं, इसलिए आपसे प्रार्थना है कि मुझे नारी-कुल की सृष्टि करने की शक्ति दें; क्योंकि वही चराचर

---

१. ततः पूर्णचिदाशस्य मूर्त्तिमाविश्य कामदाम् ।
अर्द्धनारीनरो भूत्वा ततो ब्रह्मान्तिकं हरः ॥
तं दृष्ट्वा शंकरं देवं शक्त्या परमयान्वितम् ।
प्रणम्य दण्डवद् ब्रह्मा स तुष्टाव कृताञ्जलिः ॥
—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता, ८।९।२-३

२. पृथक्चकार वपुषो भागाद्देवीं शिवां शिवः ॥
—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता, ३।३।१३ उत्तरार्द्ध

३. तां दृष्ट्वा परमां शक्तिं पृथग्भूतां शिवागताम ।
प्रणिपत्य विनीतात्मा प्रार्थयामास तां विधिः ॥
—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता. ३।३।१४

४. मनसा निर्मिताः सर्वे शिवे देवादयो मया ।
न वृद्धिमुपगच्छन्ति सृज्यमानाः पुनः पुन ॥
—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता, १६

५ मिथुनप्रभवामेव कृत्वा सृष्टिमतः परम् ।
संवर्द्धयितुमिच्छामि सर्वा एवं मम प्रजाः ॥
—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता, श्लोक १७, खण्ड ३, अध्याय ३

६. न निर्गतं पुरा त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम् ।
तेन नारीकुलं स्रष्टुं मम शक्तिर्न विद्यते ॥
—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता, खण्ड ३. अध्याय ३, श्लोक १८

जगत् का हेतु होगा।[१] साथ ही, ब्रह्मा ने उस महादेवी से एक और याचना की—चराचर-सृष्टि की वृद्धि के लिए आप सर्वसमर्थ नारी-रूप से मेरे पुत्र दक्षप्रजापति की पुत्री बनें।[२] देवी ने 'तथास्तु' कहा और ब्रह्मा को मनोवांछित शक्ति दी।[३] तत्पश्चात् जगन्माता ने अपनी भृकुटियों के मध्यदेश से अपने ही समान 'विद्युद्दामसमप्रभां' एक शक्ति की रचना की।[४] उस जगन्मयी शक्ति को देखकर महादेव ने हँसते हुए उनसे कहा—हे परमेश्वरी, ब्रह्मा ने तीव्र तप से तुम्हारी आराधना की है। अतः उनपर प्रसन्न होकर उनका सकल मनोरथ पूर्ण करो। तदनुसार परमेश्वर की आज्ञा को शिरोधार्य कर महादेवी ने दक्ष की पुत्री बनकर ब्रह्मा की चिरभिलषित वांछा पूरी की।[५] इस तरह, आदि-शक्ति, सृष्टिकर्ता को मैथुनी सृष्टि से प्रजावृद्धि करने की अतुल शक्ति देकर, शम्भु की देह में प्रविष्ट हो गई और तदनन्तर स्वयं प्रभु शम्भु भी अन्तर्धान हो गये।[६] तभी से इस लोक में स्त्री-भाग की रचना हुई, जिससे मैथुनी सृष्टि चल पड़ी।[७] यही महेश्वर के इस महान् अर्धनारी/नरार्ध रूप की मोददायिनी आख्यायिका है।

---

१. सर्वासामेव शक्तीनां त्वत्तः खलु समुद्भवः।
तस्मात्त्वां परमां शक्तिं प्रार्थयाम्यखिलेश्वरीम्॥
शिवे नारीकुलं स्रष्टुं शक्ति देहि नमोऽस्तुते।
चराचरं जगद्वृद्धिहेतोर्मातः शिवप्रिये॥
—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता, श्लोक १९ और २०।

२. चराचरविवृद्ध्यर्थमीशेनैकेन सर्वगे।
दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवाम्बिके॥
—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता, ३।३।२२

३. एवं संयाचिता देवी ब्रह्मणा परमेश्वरी।
तथास्त्विति वचः प्रोच्य तच्छक्तिं विधये ददौ॥
—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता, ३।३।२३

४. तस्माद्धि सा शिवा देवी शिवशक्तिर्जगन्मयी।
शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम्॥
—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता, ३।३, श्लो० २४

५. तमाज्ञां परमेशस्य शिरसा प्रतिगृह्य सा।
ब्रह्मणो वचनाद्देवी दक्षस्य दुहिताऽभवत्॥
—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता, ३।३, श्लोक २७

६. दत्त्वैवमतुलां शक्ति ब्रह्मणे सा शिवा मुने।
विवेश देहं शम्भोर्हि शम्भुश्चान्तर्दधे प्रभुः॥
—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता, ३।३, श्लोक २८

७. तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् स्त्रिया भागः प्रकल्पितः।
आनन्दं प्राप स विधिः सृष्टिर्जाता च मैथुनी॥
—शिवपुराण/शतरुद्रसंहिता, ३।३।२९

इस गरिमामयी मूर्त्ति को देखकर मैं भक्तिभाव से शराबोर हो उठा। प्रणाम-मुद्रा में प्रार्थना फूट पड़ी —

"कस्तूरिका चन्दन लेपनायै
श्मशानभस्माङ्ग विलेपनाय।
सत्कुण्डलायै फणिकुण्डलाय
नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ १ ॥
मन्दारमाला परिशोभितायै
कपालमाला परिशोभिताय।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय
नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ २ ॥
चलत्क्वणत्कङ्कणनूपुरायै
बिभ्रत्फणा भासुर नपुराय।
हेमाङ्गदायै च फणाङ्गदाय
नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ ३ ॥
प्रपन्नपृष्ठे सुखदाश्रयायै
त्रैलोक्य संहारकताण्डवाय।
कृतस्मरायै विकृतस्मराय
नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ ४ ॥
विलोलनीलोत्पल लोचनायै
विकासपङ्केरुह लोचनाय।
त्रिलोचनायै विषमेक्षणाय
नमः शिवायै च नम. शिवाय ॥ ५ ॥
अम्भोधर श्यामल कुन्तलायै
विभूतिभूषाङ्गजटाधराय
धम्मिल्लवत्यै च जटाधराय
नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ ६ ॥
चाम्पेय गौरार्ध शरीरकायै
कर्पूर गौरार्ध शरीरकाय
जगज्जनन्यै जगदेकपित्रे
नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ ७ ॥
सदाशिवानां परिभूषणायै
सदा शिवानां परिभूषणाय
शिवान्वितायै च शवान्विताय
नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ ८ ॥"

कस्तूरिकामिश्रित श्रीखण्ड चन्दन से जिनके प्रत्यंग लिप्त हैं, तथा सुन्दर मणिगणों से खचित कुण्डल से जो युक्त हैं ऐसी, अर्धनारीश्वर के वामांग में शोभित, पार्वती को तथा श्मशानभस्म जिनके अंग में लिप्त है एवं सर्पकुण्डल से विभूषित अर्धनारीश्वर के दक्षिणांग शिव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

पारिजात आदि पंचदेवतरुओं में अन्यतम मन्दार के पुष्पों की माला से सुशोभित और दिव्यवस्त्र से सुसज्जित पार्वती को तथा नरमुण्डमाला से सुशोभित एवं दिगम्बर-स्वरूप शिव को मेरा नमस्कार ॥ २ ॥

हस्तपद की चंचलता से चंचल एवं मधुर ध्वनियुत कंकण एवं नूपुर से युक्त तथा सुवर्णनिर्मित बाहुभूषण से युक्त पार्वती को अथच फणापरिवेष्टित सर्पराज से शोभायमान जिनके पदभूषण हैं तथा सर्पराज ही जिनके बाहुभूषण हैं, ऐसे शिव को मेरा नमस्कार ॥ ३ ॥

सुकोमल आसन पर सुखपूर्वक पृष्ठ को स्थापन कर आनन्द से बैठी हुई एवं कन्दर्प उत्पन्न करनेवाली पार्वती को अथच त्रिलोकी के संहारक ताण्डव नृत्य में तत्पर एवं कन्दर्प-दर्प के विनाशक श्रीशिव को मेरा नमस्कार ॥ ४ ॥

युवतिजनोचित चंचलतापरिपूर्ण नीलकमल सम नयन-विराजित तथा त्रिलोचना पार्वती को एवं विकासोन्मुख एवं सुस्थिर अर्धनिमीलित अरुणकमल-सम नेत्र से सुशोभित त्रिनेत्र शिव को मेरा प्रणाम ॥ ५ ॥

नवीन मेघ-मण्डली के समान घनश्याम कुन्तल अर्थात् केश-पाश और चोटी से सुशोभित पार्वती को तथा जिनके केशों में सर्वतोभावेन भस्म से धवलिमा आ रही है, ऐसे केशों की जटा को धारण करनेवाले और भस्मभूषित अंगवाले वृद्ध तापस-सम जटाधारी शिव को मेरा नमस्कार ॥ ६ ॥

चम्पापुष्पसम्भव ईषत्पीत गौरवर्ण से युक्त अर्धशरीरवाली और जगत् को उत्पन्न करनेवाली पार्वती को तथा कर्पूर-सम धवल गौरवर्ण अर्धशरीरधारी जगत्पिता शिव को मेरा नमस्कार । ७ ॥

सदा परमकल्याणकारक परमरमणीय वस्तुओं से सुशोभित तथा सदा अकल्याणकारी अशुभदायक वस्तुओं से सुशोभित शिव-संयुत पार्वती अथच शव से युक्त शिव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥

इस अर्धनारीश्वर मूर्त्ति की पृष्ठभूमि में उत्कीर्ण देवी-देवताओं का भास्कर्य भी बड़ा सजीव उतरा है। प्रधान मूर्त्ति के वामांगवाली पीछे की भुजा की बाईं ओर गरुड़गामी चतुर्भुजी विष्णु की मूर्त्ति है। पक्षिराज गरुड़ का बायाँ पर खुला हुआ है। विष्णु के ऊपर उठे बायें हाथ की तर्जनी अंगुली में चक्र पिरोया है, और दूसरा हाथ उनके आजानुबाहु होने का परिचायक है। दाहिनी ओर की दोनों भुजाएँ टूटी हुई हैं। नीचे एक स्त्री-मूर्त्ति अपने दाहिने हाथ से चँवर डुलाने की मुद्रा में खड़ी है। उसके मुकुट की कारीगरी भी बड़ी

बारीक है और उसके दक्षिण-भाग में चन्द्रकला विराजती है। कानों में कुण्डल और गले में तीन लड़ों की माला है। शायद, यह स्वयं पार्वती ही की मूर्त्ति है। इसके साथ ही दो बौनी मूर्त्तियाँ शायद उनके गणों की हों। उनकी बाईं ओर समुचित आभूषणों से सज्जित एक और स्त्री-मूर्त्ति है, जिसके बायें हाथ में कदाचित् पार्वती का शृंगारदान है। प्रधान मूर्त्ति और गरुड़. के बीच एक और स्त्री, की ऊर्ध्वकाय मूर्त्ति है, जो हाथ में फूल लिये हुए है। इसके ऊपर दो और मूर्त्तियाँ हैं, जिनमें से एक मकरारूढ गरुड़. की है। स्वयं विष्णु के पीछे भी एक पुरुष और एक स्त्री की मूर्त्ति है, और उनके नीचे एक चँवर डुलाती हुई बौनी मूर्त्ति भी। अर्धनारीश्वर के पुरुषवाले भाग के ऊपर विष्णु के समकक्ष इन्द्र और ब्रह्मा की मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं। ब्रह्मा पद्मासीन हैं। उस सिंहासन को पाँच राजहंस थामे हुए हैं, जो शान्ति और पवित्रता आदि के प्रतीक हैं। चतुरानन के तीन मुख प्रदर्शित हैं। चौथा मुख पीछे छिपा हुआ है। चतुरानन के भी चार ही हाथ हैं। इनके पीछेवाले दाहिने हाथ में पद्म है और सामनेवाला दाहिना हाथ टूटा हुआ है। शायद, उसमें वेद रहा हो। पीछेवाला बायाँ हाथ अब क्षतिग्रस्त हो गया है; उसमें कमण्डलु या स्रुव है और चौथे में चरुपात्र है। चरुपात्र और स्रुव यज्ञ के चिह्न हैं। उनके गले में भी हार है और शरीर पर अन्य वस्त्राभूषण भी। उनका वस्त्र तो बायें कन्धे से वक्षःस्थल तक लटकता है। इस मूर्त्ति के वाम भाग में ऐरावत पर आरूढ देवराज इन्द्र की मूर्त्ति है। उनके बायें हाथ में वज्र और दाहिने में अंकुश है। इन्द्र और ब्रह्मा के बीच एक और मूर्त्ति है, जिसके हाथ में चँवर है। इनके नीचे सेनापति कार्त्तिकेय की प्रभावोत्पादक मूर्त्ति है। उनके सिर पर एक उच्च किरीट लगा है। दाहिने हाथ में एक शूल है, और शरीर-यष्टि पर अन्य आभूषण भी। कार्त्तिकेय और नन्दी के बीच एक स्त्री-मूर्त्ति है, जिसके कन्धे पर चँवर रखा है। इसके पीछे एक बौनी और एक और स्त्री-मूर्त्ति है, जिनके सिर गायब हैं। इस पटल के ऊपर-वाले भाग में अर्धनारीश्वर के दोनों ओर नैसर्गिक मिथुन-मूर्त्तियाँ और कुछ ऋषियों की भी मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं। उनमें से कुछ पुष्पमाला लिये हुए हैं, मानों अर्धनारीश्वर के अभिनन्दन को उद्यत हों।

कैलासोत्तोलन

इस पटल में अभिमानी रावण के अहंकारवश शिव-समाज-सहित कैलास-शिखर को उठाने का बड़ा ही चमत्कारी दृश्य दिखाया गया है (फलक २०-२१)। रावण ने भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिए बड़ा घोर तप किया। उस क्रम में वह अपना एक-एक सिर काटकर शंकर को समर्पित करने लगा। इस तरह उसने क्रमशः अपने नौ सिर काट डाले। जब एक ही सिर बाकी बचा तब भक्तवत्सल सन्तुष्ट होकर उसके सामने प्रकट हो गये। साथ ही, भगवान् ने उसके सभी मस्तकों को पूर्ववत् प्रतिष्ठित करके उसे उसकी इच्छा के अनुसार अनुपम बल प्रदान किया। इससे प्रोत्साहित होकर रावण ने वर माँगा—'देवेश्वर, मैं आपको लंका ले चलना चाहता हूँ।' चन्द्रमौलि ने उसे अपना एक उत्तम लिंग देते हुए कहा—'तुम भक्तिभाव से इसे अपने घर ले जाओ। किन्तु, यदि तुम कहीं

इसे भूमि पर रख दोगे तो यह वहीं सुस्थिर हो जायगा।' तदनुसार रावण उस लिंग को लेकर घर की ओर चला। मार्ग में शिव की माया से उसे मूत्रोत्सर्ग की इच्छा हुई। उसे वह रोक नहीं सका। पास ही एक ग्वाले को देखकर उसने उसके हाथ में उस शिव-लिंग को थमा दिया और स्वयं मूत्रत्याग के लिए बैठ गया। मायावश रावण का मूत्रत्याग थमता नहीं था। इधर उस शिवलिंग के भार से वह ग्वाला अतिशय पीड़ित और व्याकुल हो गया। अन्ततोगत्वा विवश होकर उसने उस शिवलिंग को वहीं रख दिया। फिर क्या था, वह हीरकमय शिवलिंग वहीं सुस्थिर हो गया। वही वैद्यनाथधाम का वैद्यनाथेश्वर शिवलिंग है। 'ईश्वरेच्छा बलीयसी' जानकर रावण अपनी राजधानी लंका लौट गया। दुर्दान्त तो वह था ही, शिव से उत्कृष्ट वर प्राप्त कर वह अब और भी मदान्ध हो गया। देवगण घबरा गये—पता नहीं, यह देवद्रोही रावण आगे क्या करेगा? इस डर से उन्होंने मुनिश्रेष्ठ नारद से अनुरोध किया—इस दुःस्थिति से उद्धार पाने का कोई-न-कोई उपाय अवश्य करें। उनके अनुरोध पर नारद रावण के पास गये और उनसे कहा—तुम कैलास शिखर को उठाओ, तब पता चलेगा कि शिवजी का दिया हुआ वरदान कहाँ तक सफल है।[1]

विधिमोहित रावण को यह बात जँच गई। उसने जाकर कैलास को उखाड़ने का प्रयास किया। इससे स्वभावतः सारा कैलास हिल उठा। उसपर के सभी चराचर विचलित हो उठे। इस कैलासोत्तोलन को देखकर शिव स्वयं भी बोल उठे—यह क्या हो रहा है? तब गिरिजा ने मुस्कुराते हुए कहा—आपने रावण को जा अतुल बलवान् होने का वर दिया, यह उसी का परिणाम है।[2] शिष्य ने कर्त्तव्य कर दिखाया। कृतघ्न रावण की इस धृष्टता को देखकर और पार्वती के उक्त व्यंग्य से क्षुब्ध होकर रुद्र ने रावण को शाप दिया—रे दुर्मति दुर्भक्त रावण, तेरी भुजाओं का घमण्ड शीघ्र ही चूर्ण होगा।[3] तेरे इस दर्प को चूर करनेवाला वीर पुरुष शीघ्र ही इस जगत् में अवतीर्ण होगा।

इस पटल पर शिव और पार्वती एक साथ सुखासनस्थ हैं। त्रिलोचन की तीसरी आँख कुछ ऐसी दीखती है, मानों खुलने को उद्यत हो। मूर्त्ति अष्टभुजी जान पड़ती है, यद्यपि अब प्रायः सारे हाथ टूट चुके हैं। उनमें से दो उनके पार्षदगणों के हाथों पर टिके

---

१. कैलासोद्धरणे यत्नः कर्त्तव्यश्च त्वया पुनः
यदि चैवोद्धृतश्चायं कैलासो हि भविष्यति।
तदैव सफलं सर्वं भविष्यति न संशयः॥
गत्वा तत्र समुद्धारं चक्रे तस्य गिरेः स च।
तत्रस्थं चैव तत्सर्वं विपर्यस्तं परस्परम्॥
—शिवमहापुराण, उत्तराखण्ड, कोटिरुद्र संहिता, ४।२८।६५
(उत्तरार्द्ध और ३५)

२. सच्छिष्यस्य फलं जातं सम्यग्जातं तु शिष्यतः।
शान्तात्मने सुवीराय दत्तं यदतुलं बलम्॥

३. श्रीशिवमहापुराण के उत्तराखण्ड की कोटिरुद्रसंहिता ४ के अध्याय २८ का श्लोक ७०—७२।

हैं, मानों भगवान् उस भूडोल से विचलित हो अपना संतुलन सँभाल रहे हों। दाहिने हाथ में त्रिशूल है, जिसका फलक अभी भी दृष्टिगोचर होता है। पार्वती वामांग में हैं। उनकी मूर्त्ति बहुत बुरी तरह खण्डित है। इस प्रकोष्ठ के दोनों ओर दो द्वारपाल सन्नद्ध हैं। उनकी भृकुटियाँ वक्र होकर भी उठी हुई हैं, मानों वे भी उस भूचाल के प्रभाव से विचलित हो उठे हों। शिव की बाईं ओर अनेक छिन्न-भिन्न मूर्त्तियाँ हैं। उनके सामने पादतल में पार्षद भृंगी है। यह मूर्त्ति कुछ इतनी क्षतिग्रस्त हो चुकी है कि इसका अब आकार-मात्र ही बचा है। भृंगी की बाईं ओर सिद्धिदाता गणेश की मूर्त्ति है।

शिखरारूढ इस टोली के नीचे दशानन की शिखरोत्तोलन-मुद्रा की मूर्त्ति है। उसके कमरबन्द में तलवार कसी है और पीठ दर्शकों की ओर है। अब तो दशानन का एक भी सिर उपस्थित नहीं है। हाँ, कुछ भुजाएँ अब भी दीख रही हैं। प्रधान मूर्त्ति के ऊपर कई छोटी मूर्त्तियाँ हैं। उनमें एक गरुडारूढ विष्णु की है। पास ही पार्वती का वाहन बाघ भी है। उसपर भी भूचाल का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

शिवपुराण में वर्णित एक आख्यायिका के अनुसार, जब एक बार शिव हिमालय-स्थित निभृत निलय में पार्वती के साथ विश्राम कर रहे थे तब उनका अनन्य भक्त रावण उनसे मिलने आया और द्वारपालों द्वारा रोके जाने पर आक्रोश में उसने सम्पूर्ण कैलास पर्वत को ही उठाने की धृष्टता की। अन्तर्यामी शिव का ध्यान जब इस ओर गया तब उन्होंने दम्भी रावण के अहंकार को नष्ट करने के लिए अपने आसन के नीचे की भूमि पर अपने अँगूठे की नोक दबा दी। फलस्वरूप, लाख जोर मारने पर भी रावण कैलास को उठा नहीं सका और उसका दर्प भंग हो गया। संभव है, इस पटल में उसी कथानक को मूर्तिगत किया गया हो। इसका बड़ा ही ललित वर्णन पुष्पदन्त ने किया है :

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनम्
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः
अलभ्या पातालेऽप्यलसवलिताङ्गुष्ठ शिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥

—हे त्रिपुरारि, आपकी सेवा के फलस्वरूप तीन लोकों को निष्कंटक पाकर भी रावण ने संग्राम करने के लिए फड़कती हुई अपनी भुजाओं से स्वयं निवास-स्थान कैलास को बलपूर्वक उठाने की जब धृष्टता की तब आपने अपने अँगूठे की नोक जरा-सी दबा दी तो पाताल में भी उसका ठिकाना न लगा अर्थात् कैलास के नीचे दबकर रहना उसके लिए असह्य हो गया। ठीक ही कहा गया है कि उन्नति पाकर दुष्ट अपनी पूर्वावस्था को भूल जाता है और इतराने लग जाता है।

इस कथानक का एक प्रतीक एलोरा के कैलास-मन्दिर में प्राप्त हुआ है। कुल मिलाकर वहाँ यह दृश्य और भी प्रभावोत्पादक है। कैलास पर्वत के हिलने-डुलने का कुछ भी अता-पता नहीं मिलने के कारण पार्वती सदाशिव की ओर साश्चर्य देखती हैं।

साथ ही, दम्भी रावण को कैलासोत्तोलन के कार्य में चेष्टारत दिखाया गया है। ऊपर सदाशिव अपने एक अँगूठे से भूमि स्पर्श करते हुए अंकित हैं और उनके पास ही कुछ पार्षदगण भी। शिवपुराण में वर्णित उक्त आख्यायिका के अनुसार रावण ने अपनी इस धृष्टता के परिहार के लिए एक हजार वर्षों तक शिव-मन्त्र का जप कर उन्हें प्रसन्न किया और उनसे एक अमोघ खड्ग प्राप्त किया। इस कारण यह रावणानुग्रह-मूर्त्ति भी कहलाती है। शिव का यह स्वरूप भारतीय शिल्प में अत्यन्त प्रचलित रहा है। चूँकि एलिफैण्टा के इस पटल की मूर्त्तियाँ बहुत बुरी तरह खण्डित हैं, इसलिए शिवपुराण के कथानक की बारीकियाँ उनमें परिलक्षित नहीं हो पाती हैं।

योगेश्वर शिव

मुख्य गुफा में प्रतिष्ठित सदाशिव की नौ प्रधान मूर्त्तियों में से यह योगिराज शिव की पद्मासनासीन मूर्त्ति है। (फलक १६,१७)इस पद्म के नालदण्ड को दो नागमूर्त्तियाँ थामे हुई हैं। उनकी कमर तक की शरीर-यष्टियाँ दृष्टिगोचर हैं। योगेश्वर जटाजूट-मण्डित हैं। मुखाकृति तो बहुत क्षतिग्रस्त हो गई है, पर अब भी वहाँ जो शान्ति विराजती है, उसे देखकर रायकृष्ण दास को ऐसा भान हुआ कि योगेश्वर यहाँ अपने स्थाणु नाम को सार्थक कर रहे हैं।[1] जो हो, यह मूर्त्ति सचमुच बड़ी ही गम्भीर और भव्य है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार जिस तरह वायु-रहित स्थान में प्रतिष्ठित दीपक चलायमान नहीं होता उसी तरह ध्यानावस्थित योगी द्वारा जीते हुए चित्त की सुस्थिर स्थिति होती है।[2] रायकृष्णदास को इस स्थितप्रज्ञता की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति इस मूर्त्ति में प्रतीत हुई है। दुर्भाग्यवश इस मूर्त्ति की सभी भुजाएँ कन्धे से विच्छिन्न होकर गायब हो चुकी हैं। अतः इनके बारे में कुछ कहना मुश्किल है। इस लयण के पश्चिमी खण्ड के मण्डप की उत्तरी दीवार में इसी तरह की एक और क्षतिग्रस्त मूर्त्ति है। अतः इसके भास्कर्य की पहचान और भी दुरूह हो गई है। हीरानन्द शास्त्री के अनुसार यह शिव के अन्तिम (२८वें) अवतार नकुलीश की मूर्त्ति है।[3] वाराहकल्प के इस सातवें मन्वन्तर में युगक्रम से शंकर के अबतक २८ अवतार हुए हैं। वे हैं—(१) श्वेत, (२) सुतार, (३) दमन, (४) सुहोत्र, (५) कंक, (६) लोकाक्षि, (७) जैगीषव्य, (८) दधिवाह, (९) ऋषभमुनि, (१०) उग्र, (११) अत्रि, (१२) सुपालक, (१३) गौतम, (१४) वेदशिरा मुनि, (१५) गोकर्ण, (१६) गुहावासी, (१७) शिखण्डी, (१८) जटामाली, (१९) अट्टहास, (२०) दारुक

१. रायकृष्ण दास : 'भारतीय मूर्त्तिकला', पृ० १०८-१०९।

२. यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥
—श्रीमद्भगवद्गीता ६।१९

३. हीरानन्द शास्त्री : 'ए गाइड टू एलिफैण्टा' पृ० ५४।

(२१) लांगली, (२२) महाकाल, (२३) शूली, (२४) दण्डी, (२५) मुण्डीश, (२६) सहिष्णु, (२७) सोमशर्मा और (२८) नकुलीश्वर। इनमें से प्रत्येक के चार-चार शिष्य हुए। इस तरह योगाचार्य-रूपी महेश्वर के कुल ११२ शिष्य हैं। ये सब-के-सब सिद्ध पाशुपत माने जाते हैं। नकुली नाम से भगवान् शिव का २८वाँ अवतार द्वापर में हुआ था। जब पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण अपने छठे अंश से वसुदेव के पुत्र के रूप में 'वासुदेव' नाम से विख्यात हुए तभी ब्रह्मचारी-रूप में भगवान् शिव भी प्रकट हुए और श्मशान में एक अविच्छिन्न मृत शरीर को देखकर ब्राह्मणों के हित-साधन के लिए योगमाया के आश्रय से उसमें घुस गये और फिर वहाँ से विष्णु के साथ मेरुगिरि की दिव्य गुफा में गये। वहीं से वे नकुली नाम से विख्यात हुए।[1] शायद इसी का अपभ्रंश लकुलीश हुआ। इन्हें पाशुपत सम्प्रदाय का प्रणेता भी कहा जाता है। इनकी प्रमुख प्रतिमाएँ उड़ीसा, गुजरात और दक्खिन भारत के विशिष्ट स्थानों में पाई गई हैं। उन प्रतिमाओं से सम्बन्धित क्षेत्रों में पाशुपत सम्प्रदाय की स्थिति का भी बोध होता है। मथुरा से प्राप्त गुप्त-सम्राट् चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के काल के एक स्तम्भ पर एक प्रतिमा उत्कीर्ण है, जिसमें खड़े लकुलीश के दाहिने हाथ में गदा है, जो उनका एक विशिष्ट आयुध है।[2] लकुलीश त्रिनेत्रों से युक्त हैं। उड़ीसा से प्राप्त एक मूर्त्ति में, जो सम्प्रति आशुतोष-संग्रहालय की निधि है, द्विभुज लकुलीश को ऊर्ध्वलिंगी और नग्न दिखाया गया है। पद्मासन पर आसीन देवता का एक हाथ भग्न है और दूसरे में एक गदा प्रदर्शित है। दो लम्बोदर आकृतियाँ भी समीप में ही अंकित हैं। लकुलीश की एक अन्य मूर्त्ति उड़ीसा के सोमेश्वर-मन्दिर पर उत्कीर्ण है, जिसमें चतुर्भुज देवता को दो जटामुकुट से युक्त एवं एक हाथ में गदा लिये हुए प्रदर्शित किया गया है। जो हो, इसमें शक नहीं कि शिव के २८ अवतारों में लकुलीश का यह कायावतार उत्कृष्ट सिद्धिदाता माना जाता है। इस अवतार में योगिराज के कुशिक, गर्ग, मित्र और पौरुष्य नाम के चार तपस्वी शिष्य हुए। ये चारों वेदों के पारगामी ऊर्ध्वरेता ब्राह्मण योगी थे, और अन्ततोगत्वा माहेश्वर योग को प्राप्त कर शिवलोक को प्राप्त हुए। जो हो, पुराणों में इन अवतारों के जो लक्षण दिये गये हैं, उनसे योगेश्वर की इस मूर्त्ति से तुलना सम्भव नहीं है; क्योंकि यह मूर्त्ति सम्प्रति अत्यधिक खण्डित हो गई है। चूँकि लयण में गर्भगृहवाले शिवलिंग को लेकर शिव के १० पटल हैं, इसलिए एक उद्भावना यह भी हुई कि ये शिव के निम्नांकित १० अवतारों[3] के प्रतीक हैं :

---

१. श्मशाने मृतमुत्सृज्य दृष्ट्वा कायमनामयम्।
ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया
दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्द्धं च विष्णुना।
भविष्यामि तदा ब्रह्मल्लँकुलो नाम नामतः॥

—शिवमहापुराण-रुद्रसंहिता ५।४६ और ४७

२. डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त : गुप्त-साम्राज्य, फलक ९

३. देखें, शिवमहापुराण, अध्याय ९।

अवतार का नाम	सम्बन्धित शक्ति का नाम
१. महाकाल	महाकाली
२. तार	तारा देवी
३. बाल भुवनेश्वर	बाल भुवनेश्वरी
४. षोडश श्रीविद्येश	षोडशी श्रीविद्या
५. भैरव	भैरवी गिरिजा
६. छिन्नमस्तक	छिन्नमस्ता
७. धूमवान्	धूमावली
८. बगलामुख	बगलामुखी
९. मातंग	मातंगी
१०. कमल	कमला

पर, इनसे यहाँ के विभिन्न पटलों का कोई मेल नहीं बैठता। अतः उक्त उद्भावना भी क्लिष्ट कल्पना ही होगी। इस मुख्य मूर्त्ति के ऊपर देवी-देवताओं की भी कई मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं। दाहिनी ओर ऊपर में हंसारूढ ब्रह्मा की मूर्त्ति है। उनके नीचे ऐरावतारूढ इन्द्र के नीचे की ओर कई और मूर्त्तियाँ हैं, जिनमें एक सूर्यदेव भी हैं, जिनके दोनों हाथों में एक-एक कमल दीखता है। योगेश्वर की मूर्त्ति की बाईं ओर केले का स्तम्भ है, जिसके तीन पत्ते खुले हैं। उनके बायें घुटने के नीचे एक सूर्यमुखी फूल-जैसी कोई वस्तु दीखती है। प्रधान मूर्त्ति के दोनों ओर दो चँवरधारिणी मूर्त्तियाँ हैं और दो और स्त्री-मूर्त्तियाँ, जिनके चेहरे बिलकुल सपाट हो गये हैं। अतः यह पता नहीं लग सका कि वे वहाँ किस रूप में हैं। केले के स्तम्भ के ऊपर गरुडगामी विष्णु की मूर्त्तियाँ हैं। विष्णु के घुँघराले बाल तो दीखते हैं, पर उनकी तथा पक्षिराज की मुखाकृतियाँ कुछ इतनी क्षतिग्रस्त हो गई हैं कि उनके बारे में कुछ कहना सम्भव नहीं है। विष्णु के ऊपर एक अश्वारोही-मूर्त्ति है, जिसके सिर और सामने के पाँव भी टूटे हुए हैं। उनके पीछे एक जपमालाधारी ऋषि की मूर्त्ति दीखती है। शायद इस महत्त्वपूर्ण पृष्ठभूमि से भी रायकृष्णदास को यह अनुमान हुआ हो कि यह मूर्त्ति नकुलीश-रूप में भगवान् शिव के २८वें योगेश्वर अवतार की मूर्त्ति है।

जैसा कि अन्धक-रिपु मुद्रावाली मूर्त्ति के सन्दर्भ में कहा गया है, यह भी सम्भव है कि इसमें पाशुपत व्रतवाले अनुष्ठान में लगे योगाचार्य की झाँकी दिखाई गई हो। शिव-महापुराण के अनुसार शैव-आगम के दो भेद हैं—श्रौत और अश्रौत। जो श्रुति के सार-तत्त्व से सम्पन्न है, वह श्रौत है, और जो स्वतन्त्र है, वह अश्रौत माना गया है। स्वतन्त्र शैवागम पहले १० प्रकार का था, फिर १८ प्रकार का हुआ। वह कायिका आदि संज्ञाओं से सिद्ध होकर सिद्धान्त नाम धारण करता है। श्रुतिसारमय जो शैव-शास्त्र है, उसका विस्तार सौ करोड़ श्लोकों में किया गया है। उसमें उत्कृष्ट 'पाशुपत ज्ञान' का वर्णन किया गया है। युग-युग में होनेवाले शिष्यों को उसका उपदेश देने के लिए भगवान् शिव

स्वयं ही योगाचार्य-रूप से जहाँ-तहाँ अवतीर्ण हो उसका प्रचार करते हैं। पाशुपत सिद्धान्त में जो परम धर्म बताया गया है, वह चर्या, विद्या, क्रिया और योग के चार पदों के कारण चार प्रकार का माना गया है। इसमें पाशुपत योग ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यही वह अनुष्ठान था, जिसके सफल सम्पादन से स्वयं सदाशिव भगवान् अन्धकासुर–जैसे ब्रह्मा के वरदान से सम्पोषित महाबली को पराजित करने में समर्थ हुए। यही पाशुपत व्रत है, जिससे योग और मोक्ष दोनों उपलब्ध होते हैं। यह दृढ़तापूर्वक शिव का साक्षात्कार कराने-वाला कहा गया है। इस पाशुपत व्रत की विधि और महिमा का बड़ा ही विशद वर्णन शिवपुराण की वायवीय संहिता (पूर्व खण्ड) में दिया गया है।[1]

मानिनी पार्वती

स्पष्टतः यह कैलासविहारी शिव और पार्वती के दाम्पत्य जीवन का एक दृश्य है। (फलक २३) दोनों उत्तुंग सिंहासनासीन शास्त्रानुमोदित अलंकरणों से विभूषित हैं। शिव के चार हाथ थे, पर वे सभी अब टूटकर गायब हैं। उनका मुख और उसके चतुर्दिक् का प्रभामण्डल भी क्षतिग्रस्त है। वे पलथी मारे बैठे हैं। बायाँ पाँव तो सतह पर समानान्तर रूप से रखा है, पर दाहिना पाँव थोड़ा ऊपर उठा हुआ और ठोस रूप से रखा हुआ है। सामने का दाहिना हाथ तो अब भी अक्षुण्ण है। उसकी कलाई की पहुँची बाईं जाँघ के नीचे पड़ती है। सामने का दायाँ हाथ दाईं जाँघ पर रखा हुआ-सा जान पड़ता है। पार्वती उनके वामांग में हैं। उनके गले से एक मोटी सिकड़ी-जैसे हार से वक्षोज पर लटकता टीकरा अब नष्टप्राय हो चुका है। यह हार गिरिजा-महेश के विवाह-पटल वाली मूर्त्ति के हार-सा ही है। पार्वती की मूर्त्ति की बाईं भुजा, दाईं जाँघ और पाँव पर अब भी वस्त्राभूषण के कुछ अवशेष दृष्टिगोचर हैं। पार्वती की यह मूर्त्ति अधबैठी जैसी मुद्रा में है। उनका दायाँ पाँव तो घुटने से मुड़ा हुआ सिंहासन पर समानान्तर रूप से रखा हुआ है, पर बायें पाँव की मुद्रा कुछ ऐसी है, मानों वह उनके ठीक नीचे बैठे नन्दीश्वरवाले सिंहासन से उतरने को उद्यत हो।

हीरानन्द शास्त्री के अनुसार इस पटल में प्रदर्शित पार्वती की भाव-भंगिमा मानिनी की है। अपने सिंहासन से नीचे उतरने को उद्यत उनकी मुद्रा कुछ कुपित-सी तो अवश्य जान पड़ती है। शिवमहापुराण की वायवीय संहिता (पूर्वखण्ड) के दशम अध्याय में वर्णित एक कथानक में शुम्भ-निशुम्भ के वध के लिए सृष्टिकर्ता की प्रार्थना पर शिव ने पार्वती को काली कहकर कुपित किया था। इस कथनाक के अनुसार, उन दिनों शिव-पार्वती विचित्र कन्दराओं से सुशोभित परम रमणीय मन्दराचल पर निवास कर रहे थे। उस समय अर्धनारीश्वर के प्रसाद से मैथुनी सृष्टि द्वारा बढ़ी विधाता की प्रजाओं के बीच शुम्भ और निशुम्भ नाम के दो दैत्य उत्पन्न हुए। उस भ्रातृ-युगल ने घोर तपस्या के

---

१. देखें, गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'संक्षिप्त शिवपुराणांक' की वायवीय संहिता (पूर्व खण्ड) का अध्याय १७ और १८।

अनन्तर परमेष्ठि ब्रह्मा से यह वर प्राप्त किया कि इस जगत् के किसी भी पुरुष से वे मारे नहीं जा सकेंगे। किन्तु, इस मर्त्यलोक में उन्हें मरण-धर्म तो किसी-न-किसी तरह स्वीकार करना था ही। अतः, अपनी समझ से उन्होंने यह असम्भव शर्त्त लगाई कि पार्वती के अंश से जो अयोनिजा कन्या उत्पन्न हो, जिसे पुरुष का स्पर्श तथा रति प्राप्त नहीं हो और जो दुर्दमनीय पराक्रम से सम्पन्न हो, उसके प्रति काम-भाव-युक्त होने पर ही वे युद्ध में उसी के हाथों मृत्यु को प्राप्त करें। ब्रह्मा ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकृति दे दी। अब क्या था, उन दोनों दैत्यों ने सारे जगत् में 'त्राहि-त्राहि' मचा दी। उनके दुराचार से प्रजा, वेद और ब्राह्मण, सभी सृष्टिकर्त्ता को गुहारने लगे। तब विधाता ने उन दोनों के वध के लिए महादेव से प्रार्थना की—'भगवन्, आप एकान्त में देवी की निन्दा करके भी जैसे-तैसे उन्हें क्रोध दिलाइए। आप उनके रूप-रंग की निन्दा कीजिए, जिससे वे काम-भाव-रहित कुमारी-रूप में पुनः अवतरित हों और तब उस शक्ति को शुम्भ और निशुम्भ के प्रति नियोजित कर आप इस त्रस्त हुई सृष्टि का उद्धार कीजिए।' ब्रह्मा की इस प्रार्थना को स्वीकार कर भगवान् नीललोहित ने एकान्त में पार्वती की निन्दा करते हुए मुस्कुराकर कहा—'तुम तो काली हो।' यह एक अभूतपूर्व घटना हुई। 'तप्तकञ्चन-वर्ण श्यामा' पार्वती अपने रूप के विषय में देवाधिदेव से श्यामवर्णता का आक्षेप सुनकर कुपित हो उठीं और यह संकल्प किया—'इस वर्ण को त्यागकर मैं अब गौर वर्ण ग्रहण करूँगी अन्यथा स्वयं मर-मिट जाऊँगी।' ऐसा कहकर देवी ने सदाशिव की शय्या से उठते हुए तपस्या के लिए दृढ़ निश्चय करके गद्‌गद कण्ठ से अन्यत्र जाने की आज्ञा माँगी। आश्चर्य नहीं, अगर यह पटल उसी दृश्य का द्योतक हो। भूतनाथ ने लाख समझाया—प्रिये! मैंने तो महज विनोद के लिए ऐसी बात कही थी। मेरे इस परिहास से दुःख मानकर तुम्हें कुपित नहीं होना चाहिए। पर, पार्वती पर इसका कोई असर नहीं हुआ। कहा—मेरा शरीर गौरवर्ण का नहीं है। इस बात को लेकर आपको खेद अवश्य होता होगा, अन्यथा परिहास अथवा मनोविनोद में भी आप मुझे काली-कलूटी नहीं कहते। स्पष्टतः मेरा रूप-रंग आपको पसन्द नहीं है। अतः जबतक मैं तपस्या द्वारा इस वर्ण का त्याग नहीं कर लेती, यहाँ रह नहीं सकती। महादेवी के ऐसा कहने पर महादेव मुस्कुराते हुए चुप रह गये। ब्रह्मा की मनस्कामना पूरी करने की इच्छा से उन्होंने देवी को अपने संकल्प से वंचित करने के लिए हठ नहीं किया। अस्तु, महादेवी ने तीव्र तपस्या द्वारा ब्रह्मा की आराधना की। उससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा देवी के समक्ष उपस्थित हुए। उनका अभीष्ट जानकर ब्रह्मा ने कहा—इसके लिए आपकी इच्छा-मात्र पर्याप्त थी। पर, इस क्रम में एक लोकहित की भी सिद्धि होगी। शुम्भ-निशुम्भ के उपद्रव बहुत बढ़ गये हैं। उन्हें मैंने जो वर दे रखा है, उससे उनका घमण्ड बहुत बढ़ गया है। वे वेद-ब्राह्मण और देवताओं को भी सता रहे हैं। उन दोनों को आपके हाथों मारे जाने का वरदान मिला है। अतः आपके द्वारा जो शक्ति रची या छोड़ी जायगी, उसीसे उनकी मृत्यु होगी। तदनन्तर, पार्वती तथाकथित काली त्वचावाले आवरण को छोड़कर गौरवर्ण हो गईं। इस तरह त्वचा-कोष (काली त्वचा-रूपी आवरण) के रूप में त्यागी गई जो उनकी शक्ति थी, उसी का नाम कौशिकी हुआ।

शरीरकोशाद्यतस्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका ।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥[1]

यही शक्ति दैत्यप्रवर शुम्भ और निशुम्भ का वध करनेवाली हुई। इसकी बड़ी रोचक कहानी शिवमहापुराण में वर्णित है और दुर्गासप्तशती में भी।

मानिनी-रूप में पार्वती का और कोई प्रकरण तो मुझे कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुआ है। हाँ, एक जगह एक भक्त कवि ने अपना मान-भंग करने के लिए उद्यत मानिनी पार्वती के काल्पनिक रूप का बड़ा ही अनूठा वर्णन किया है—

ईशे पदप्रणतभाजि मुहूर्त्तमात्रम्
प्राणप्रियेऽपि कुरु मानिनि मा प्रसादम् ।
जानातु ते पतिरसौ पदयोर्नताना-
मस्माकमीदृशमनोरथभङ्गदुःखम् ॥

भक्त ने कल्पना की है—किसी कारणवश महादेवी मान में हैं। उनके मान-भंग के लिए देवाधिदेव ने सारे शास्त्रोक्त उपचार किये, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा, उन्होंने देवी के चरणों पर अपना माथा टेक दिया। शास्त्रानुसार, इस उपचार के बाद मानिनी को अपना मान छोड़ देना आवश्यक है, अन्यथा उनपर अकुलीना होने का आक्षेप लग सकता है। सदाशिव ने देवी के चरणों पर ज्यों ही माथा टेका त्यों ही भक्त-प्रवर ने महादेवी से गुहार किया—यद्यपि आपके प्राणप्रिय आपके चरणों पर प्रणत हैं तथापि मेरी विनती है कि मुहूर्त्त-मात्र के लिए मान-भंग मत करें। यह एक अनोखी विनती थी। ऐसी अभक्ति और अभद्रता क्यों? उद्भट भक्त ने स्पष्ट किया—हमलोग नित्य महादेव के चरणों में माथा टेकते हैं। पर, हमारा मनोरथ सिद्ध नहीं होता। स्पष्टतः उन्हें इस बात का अनुभव ही नहीं होता है कि जब कोई अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए किसी के चरणों का आश्रय लेता है, और तब भी उसका अभीष्ट सिद्ध नहीं होता, तब उसे कैसा दुःख होता है। अतः मातः, आज महादेव को, क्षणमात्र के लिए ही सही, इस बात का अनुभव हो लेने दीजिए तो भविष्य में इस अनुभव के आधार पर आशुतोष अपना नाम सार्थक करते हुए हमारे अभीष्ट को सिद्ध करने में विलम्ब कदापि नहीं करेंगे।

इस पटल में पार्वती के दायें कन्धे के पीछे एक चँवर-धारिणी स्त्री-मूर्ति है। उसके कानों में कुण्डल और गले में हार है तथा सिर मुकुट-मण्डित-सा है। उसके दाहिने हाथ में चँवर है और गोद में एक बालक है, जो कदाचित् शिव-सुत स्कन्द ही है। पार्वती की बाईं ओर एक और दासी की मूर्त्ति है। उसके भी अलंकरण कुछ वैसे ही हैं। उससे काफी दूर एक पुरुष-मूर्त्ति है। उसका दाहिना हाथ वक्षःस्थल पर है और बायाँ उसके उत्तरीय की गाँठ पर आरोपित है। शिव के दायें कन्धे के पीछे भी एक चँवर-धारिणी की मूर्त्ति है। उसके भी दाहिने हाथ में चँवर है। शिव के पादतल में एक शिरोविहीन मूर्त्ति का कंकाल-मात्र ही बचा है। कदाचित् यह पार्षद-श्रेष्ठ भृंगी ही थे। इनके

१. दुर्गासप्तशती, ५।८७

पीछे एक ऊँची मूर्त्ति है। उसका शिरस्त्राण काफी ऊँचा है। कानों में कुण्डल और गले में हार के साथ उसकी बाईं भुजा से नीचे कलाई तक लम्बा लबादा अब भी अवशिष्ट है। इस मूर्त्ति के पादतल में एक आयताकार ताखे पर एक तीन फुट ऊँची बौने की मूर्त्ति है। उसकी भुजाएँ कैंचीनुमा पड़ी हैं। उसके नीचे के पैनेल काफी क्षतिग्रस्त हो चुके हैं। शिव-पार्वती जिस सिंहासन पर बैठे हैं, उसकी मूर्त्तियाँ कुछ इतनी क्षतिग्रस्त हो चुकी हैं कि उनके बारे में कुछ कहना सम्भव नहीं है। नन्दीश्वर के वामांग में एक कृत्रिम केशपाश धारण किये हुए एक स्थूलकाय बौने की मूर्त्ति है। उसके नीचे दो और बन्दर-जैसे जीव दीखते हैं। उसके बायें भाग में कौन-सी मूर्त्तियाँ थीं, उनका कोई पता-ठिकाना मालूम नहीं हो सका। शिव और पार्वती की प्रधान मूर्त्ति के ऊपर पहाड़ की संगतराशी काफी ऊँची-नीची की गई है। शायद उनका उद्देश्य कैलास का दृश्य उपस्थित करना रहा हो। ऊपर के दोनों भागों में यथाविहित अप्सराओं और गन्धर्वों की मिथुन-मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं। उनमें से कुछ पुरुष-मूर्त्तियों के घुँघराले कृत्रिम बाल हैं। दाईं ओर एक कृशगात्र ऋषि की मूर्त्ति है। उसके बायें हाथ में मोदक या फूल-भरी टोकरी है, जिसमें से वह दायें हाथ से मोदक या पुष्प बाँटते या विखेरते जैसे दीख पड़ते हैं। शिव के सिर के ऊपर कुछ ऊपर बाईं ओर एक घण्टी-जैसी वस्तु दीखती है। शायद, यह गर्भगृहवाले लिंग का प्रतीक हो। इसी तरह के एक और स्तूपनुमा दृश्य का उल्लेख अन्धकरिपुवाले पटल में भी किया गया है।

★

शब्दानुक्रमणिका

अ

अंकुश—२७
अँगरेज—४
अंशुमाली—३५
अजिताक्षुधी—३३
अट्टहास—६२
अत्रि—६२
अनिरुद्ध—६
अन्ध—२८
अन्धक—२८, २९, ३१, ३२
अन्धकरिपु—२७
अन्धकरिपु-मूर्त्ति—२७
अन्धकासुर—१५, २७, २८, ६५
अन्धकासुर-वध—१२, २१
अपोलोबन्दर—१, ५
अभय—२७
अमृत-कलश—४९
अमृतदेव—३२
अयोनिजा—६६
अरब सागर—१
अरिमर्दन—२८
अर्धनारीश्वर—८, १३, १५, २१, ५४, ५८, ५९, ६५
अर्धनारीश्वर-कल्पना—५३
अर्धनारीश्वर शिव—५३
अर्सकिन—१६
अलाउद्दीन खिलजी—४
असुरराज बाणासुर—६
अहमदाबाद—४

आ

आनन्द—[illegible]
आनन्दलहरी—५३ (टि०)
आनन्दाश्रम—५१ (टि०)
आयहोल-अभिलेख—२
आर्य-विवाह—४०
आशुतोष-संग्रहालय—६३
औविंगटन—२०, २१

इ

इंगलैण्ड—९
इतोक—५१
इण्डियन ऐण्टीक्वैरी—३ (टि०)
इन्द्र—२३, २५, २६, ३२, ४१, ४३, ५९, ६४
इड़ा—५४
इड़ा-पिंगला—५४
ईशान—२१, २७

उ

उग्र—२१, ६२
उड़ीसा—६३
उमा-महेश्वर—४२
उषा—६
उषा-अनिरुद्ध—७
ऊर्ध्वलिंगी लकुलीश—६३

ऋ

ऋग्वेद—४३
ऋषभमुनि—६२

ए

एपीग्रेफिया इण्डिका—२ (टि०)
एम० बी० शालीमार—५
एलिफैण्टा—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, १३, १५, २२, ६२
एलिफैण्टा-लयण—३४
एलोरा—९, ३४, ६१
ऐन्द्री—१८

ऐरावत—२६, ५९

क

कंक—६२
कटि-वस्त्र—२५
कथकली-नृत्य—२४
कपाल—२७
कपिल—४३
कम्बोडिया—५१
करण्ड—१
करण्ड-मुकुट—२५
करधनी—४६
कर्नाक बन्दर—५
कामदेव—३८, ४१
कार्त्तिकेय—५९
किन्नर—३९
किरीट-मुकुट—२५
कुण्डल—२७
कुमार कार्त्तिकेय—२६
कुमारसम्भव—३४, ३८, ३९, ४०, ४२, ५१, ५२ (टि०)
कुमारस्वामी—२४
कुशिक—६३
'कृत्तिवास'—२८
केव-टेम्पुल्स ऑव इण्डिया—८(टि०), ९(टि०)
कैलास—६०, ६१
कैलास-मन्दिर—६१
कोंकण—३
कोटिरुद्रसंहिता—६० (टि०)
कौथेम ताम्र शासन—३
कौमारी—१८
कौलज्ञान-विवेक—५३ (टि०)

ख

खप्पड़—२७

गंगा—४०, ४२, ४४, ४५, ४६, ४७, ४९
गंगाधर शिव—१३
'गंगालहरी'—४७ (टि०)
गंगावतरण—२१, २४, ४४, ४५ (टि०), ४६, ४७ (टि०)
गज-चर्म—२७, २८
गजमुण्ड—२७
गजासुर—२७, २८
गणपति—२९, ३३
गणेश—१८
गन्धर्व—१९, ३९, ४६
गन्धर्व-दम्पती—१८
गया—७
गरुड़—४८, ५९
गर्ग—६३
गर्भगृह—११, १२, १३, १७, १८, १९, २०, ३३, ६३, ६८
गाइड टु एलिफैण्टा—९ (टि०)
गान्धार—५१
गिरिजा—२९, ६०
गिरिजाकुमारी—१५, ४३
गिरिजा-महेश—६५
गुजरात—६३
गुप्तकाल—९
गुप्त-साम्राज्य—६३ (टि०)
गुहा-मन्दिर—१६
गुहावासी—६२
गृध्रकूट—७
गेट-वे ऑफ इण्डिया—५
गैरिया द' ओती—१३
गोकर्ण—६२
गोपीनाथ कविराज, म० म० डॉ०—२८
गौतम—६२
गोरक्ष-सिद्धान्त-संग्रह—५४ (टि०)

घ

'घार'—१

घारापुरी—१,२

च

चण्डवदना देवी—३३

चण्डवीर्य—२९

चतुरानन—२६, ५१

चन्द्रगुप्त (द्वितीय)—६३

चन्द्रमा—३३,५३

चन्द्रमौलि—५९

चन्द्रमौलीश्वर—२९

चन्द्रशिला—१७

चन्द्रशेखर—३६, ४३

चामुण्डा—१८

चालुक्य—४, ८

चालुक्य-नरेश पुलकेशिन्—२

चीन—५१

ज

जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'—४४, ४४ (टि०), ४५ (टि०), ४६, ४७ (टि०)

जटामाली—६२

जटा-मुकुट—२५

जनार्दन मिश्र, डॉ०—२३, २५ (टि०), २७ (टि०), २८, २९ (टि०), ५२ (टि०)

जम्बू द्वीप—२४

जयमालाधारी ऋषि—६४

जयशंकर प्रसाद—४१

जरासन्ध—७

जह्नु ऋषि—४६

जाओ पाइरे—४

जातुक (बिटुमेन)—१६

जापान—५१

जाह्नवी—४६

जीजाबाई-उद्यान—१

जे० एच्० वान लिन्सचौटेन—२

जेट्टी—५, ६, १०

जैगीषव्य—६२

जोगेश्वरी देवी—२

ट

ट्रेवेल ऐण्ड ट्यूब—५

ठ

ठाकरसी करमसी रणमल लोहाना—६

ड

डमरू—२७

डियोगो द काउतो—१, १३

'डिस्कोर्स ऑफ वायजेज'—२

डोना रोजा मेरिया मैन्युअल द' अल्मीडा—४

त

तण्डु—२३

तपःपूत—३२

तम—२८

तलवार—२७, ६१

ताजमहल होटल—५

ताण्डव-नृत्य—२४

तामिस्र—२८

तारकासुर—५१

तुर्किस्तान—५१

तैलप (द्वितीय)—४

तोरण-द्वार—५

त्रिपुरारि—६१

त्रिमूर्त्ति—२१

त्रिलोचन—३७

त्रिशूल—२७, २८

द

दकूतो—१६

दक्खिन भारत—६३
दक्ष—३४
दण्डी—६३
दधिवाह—६२
दमन—६२
दशरथ—७
'दाई इतोक'—५१
'दा एशिया'—९ (टि०)
दानवेन्द्र—२९
दारुक—६२
दिगम्बर—२८
दुर्गादेवी—२७
दुर्गासप्तशती—६७, ६७ (टि०)
दुर्योधन—३१
देव—२४,२६
देवदत्त— ७
दैत्य—२४
दैत्यराज—३०
द्वारिकापुरी—६

ध

धतुरा देवी—३३
ध्रुव—४०,४१

न

नकुली—६३
नकुलीश—६२
नकुलीश्वर—६३
नटराज—११, २१, २२, ,२३, २४, २५, २६
नटराज-मूर्त्ति—२६
नटराज शिव—१९
नन्दी—५९
नन्दिपीठ—१७
नन्दीश्वर—६५,६८
नवनीत—५१ (टि०)
नागराज—५०
नागार्जुनी—७
नारद——६०
नारसिंही—१८
'नारायण'—३
नीलकमल—५८

प

पण्डितराज जगन्नाथ—४७
परडू—४
परब्रह्म शिव—१५
परमेश्वर—२९
परमेश्वरीलाल गुप्त, डॉ०—४(टि०),(६३टि०)
परशु—२७
पशुपति—२१
'पश्चिमीसागर'—२
पाइक—२०
पारिजात—५८
पार्वती—२४, २५, २६, २९, ३२, ३४, ३५, ३७, ३८—४०, ४३, ४८, ५८, ५९ — ६१, ६५, ६७
पावनी—४६
पाश—२७
'पाशुपत ज्ञान'—६४
पाशुपत व्रत—६५
पुरी—२,३
पुर्त्तगाली—४, १३, १६
पुलकेशिन्—३
पुष्पदन्त—२१,२३
पूर्वी इराक—६
पोरफाइरी—८
पोरी—२
पौरुष्य—६३
प्रतिमा-लक्षण—२८
प्रतीक और प्रतिमान—५१
प्रमथ-पति—३३
प्रह्लाद—२९

फ

फर्गुसन और बर्जेस—८ (टि०), ९ (टि०)
फाह्यान—७
फेरी ह्वार्फ—५

ब

बर्जेस—८, ९
बम्बई—१, ४, ५, ६
बाघम्बर—४६
बिन्दु-सरोवर—४८
बौद्ध-चैत्य—८
बौद्ध-विहार—२०
बौद्ध-सम्प्रदाय—७
बौद्ध-साहित्य—७
ब्रह्मलोक—४३
ब्रह्मा—२६, २७, ३०, ३१, ३२, ३४, ३९, ४३, ४८, ४९, ५१, ५२, ५६, ५९, ६४, ६६
ब्राह्मण-धर्म—८
ब्राह्मण-लयण—८
ब्राह्मणी—१८

भ

भगवान् नीललोहित—६६
भगवान् बुद्ध—७
भगीरथ—४३, ४६, ४८
भव—२१
भाउ का धक्का—५
भाऊदाजी—३
'भारतीय प्रतीक-विद्या'—२३, २५ (टि०), २७ टि०), २८, २९ (टि०), ४९ (टि०), ५२ (टि०)
'भारतीय मूर्त्तिकला'—६२ (टि०)
'भारतीय वास्तुकला'—४
भास्कर—१४
भास्कर्य—१६, २७, ५८, ६२
भूतनाथ—६६

म

मगध—३
मथुरा—६३
मदजल—२९
मन्दराचल पर्वत—२९, ३२, ६५
मनुसंहिता—५३ (टि०)
महाकवि कालिदास—३४, ३५, ३६, ३८, ४१, ४२, ५१
महाकाल—६३
महादेवी—५६
महानदी—४६
महामोह—२८
महायान—७
महाशिवपुराण—२८
महेश—३१, ३२, ५२
महेश्वर—६३
माइकेल ऐंजेलो—१५
मातुलुंग—५०
मातृका-मन्दिर—१६, ६३
मानिनी पार्वती—१२, २१
माहेश्वर—२३
माहेश्वरी—१८
मित्र—६३
मुण्डीश—६३
मूँगिया पत्थर (कार्नेलियन)—३
मेरुगिरि—६३
मैनख़ोव—१
मैन्युएल रेवेल्लोद सिल्वाँ—४
'मोर'—३
मोह—२८
'मौर्य'—३, ८

य

युद्ध-खण्ड—२९

युन-थान—५१
योगदर्शन—५४
योगीश्वर—३३
योगेश्वर (लकुलीश)—२१, २४, ६४

र

राजगृह—७
राजघाट—१
राजपुरी—१
राजहंस—४८, ५९
राजा डी० जाओ (तृतीय)—९
राजा सगर—४२, ४३
राधाकमल मुखर्जी—४९,५०,५१ (टि०)
रायकृष्ण दास—६२, ६४
रावण—१२, ५९, ६०, ६१, ६२
रावण-दर्प-दलन-मूर्त्ति—२१
राष्ट्रकूट—४, ८
राष्ट्रकूट-वंश—१४
रुद्र—२१,६०
रुद्रसंहिता—२८, २९, २९ (टि०), ३० (टि०), ३१ (टि०), ३२ (टि०), ३३ (टि०)

ल

लंका—५९
लकुलीश—११,१६,६३
लकुलीश शिव—१९
लक्ष्मी—२५,४२
लयण—४ (टि०), ५ — ९, ११, १३
लयण-मन्दिर—१६
लयण-वास्तु—१७
लांगली—६३
लिंगपुराण—२२
'लेण'—२ (टि०), ४, ४ (टि०)
लोकाक्षि—६२
लोमहर्षक—३२

व

वराहपुराण—२८, ४९, ४९ (टि०)
वसई—९, ९ (टि०)
वसुदेव—६३
वाग्देवी—४१
'वामांगी'—४०
वायवीय संहिता—६५, ६५ (टि०)
वाराणसी—२७
वाराही—१८
वाल्मीकीय रामायण—४५, ४८
विक्रमादित्य (पंचम)—३
विक्टोरिया-गार्डेन—१
विद्याधर—३९
विश्वकर्मा—३९
विश्वामित्र—४३
विष्णु—१८,२६,३२,३३,३४,३९,४८,५१, ५२,५८,५९,६१,६३,६४
विष्णुपुराण—४३
वीरभद्र—१८
वृषभ-स्कन्ध—१५
वेद—२७
वेदशिरा मुनि—६८
वेधस्—३१
वैद्यनाथधाम—६०
वैष्णवी—१८

श

शंकर—२३,२७,२८,३०,३९,४०,४१,५५
शतरुद्र संहिता—५४ (टि०), ५५ (टि०), ५६ (टि०)
शम्भाजी—४
शर्व—२१
शिखण्डी—६२
शिव—२४ — २८, ३३, ३८, ४२, ४५, ४७, ४८, ५२, ६०, ६५

शिवकवच स्तोत्र—२७
शिव-पार्वती—६८
शिव-पार्वती-विवाह—२१, ३४, ३९, ४०
शिवपुराण—५४ (टि०), ५५ (टि०), ५६ (टि०), ६१, ६२, ६५
शिव-मन्दिर—८, १०, १५, १८, २२, ५१
शिवमहापुराण—२९, २९ (टि०), ३० (टि०), ३१ (टि०), ६० (टि०), ६४, ६५, ६७
शिवमहिम्नस्तोत्र—२२ (टि०), २४ (टि०), २६ (टि०), २८ (टि०), ३२ (टि०)
शिव-लयण—८
शिवलिंग—२२, ३३, ५१, ६०
शिवलोक—१५, ६३
शिवाजी—४
शिवा-महेश्वर—४९, ५१
शूल—२७
शूली—६३
श्रृंग—२७
शैलजा—२३
शैवधर्म—१४
शैव-मन्दिर—१
श्रीकृष्ण—६, ६३
श्रीमद्भगवद्गीता—६२
श्रीराम—४३

स

'संक्षिप्त शिवपुराणांक'—६५ (टि०)
सदाशिव—१५, २२, २९, ३६, ३७, ३८, ४१, ४९, ५०, ५१, ६१, ६५, ६६, ६७
सप्तम एडवर्ड—५
सप्तपर्णी गुहा—७
'सम्पदाओं की पुरी'—२
सम्राज्ञी मेरी—५
सम्राट् अशोक—३, ७
सम्राट् पंचम जार्ज—५
सर्प-कुण्डल—१७
सरस्वती—२५, ४१
सहिष्णु—६३
सिकन्दर—६, ७
सिन्धु—४६
सीता—४६
सुतार—६२
सुपालक—६२
सुसुक्षा—४६
सूर्य (देव)—३३, ५३, ६४
सैलानी—५
सोम शर्मा—६३
सोमेश्वर-मन्दिर—६३
स्वयम्भू—३१
स्वर्गंगा—२४

ह

हठयोगदीपिका—५३ (टि०)
हरिवंशपुराण—६
हण्टर, डॉ०—२६
ह्लादिनी—४६
हस्ती—३१
हिमालय—३८, ६१
हिरण्यगर्भ—५२
हिरण्याक्ष—२८, ३०
हीरानन्द शास्त्री—९, २७, ४८, ५०, ६२, ६२ (टि०), ६५
हीनयान—७
हेराल्ड स्मिथ—९
हैमिल्टन—२१

एलिफंण्टा द्वीप की पहाड़ियाँ
फलक-सं० (१ पृ० सं० १, ५)

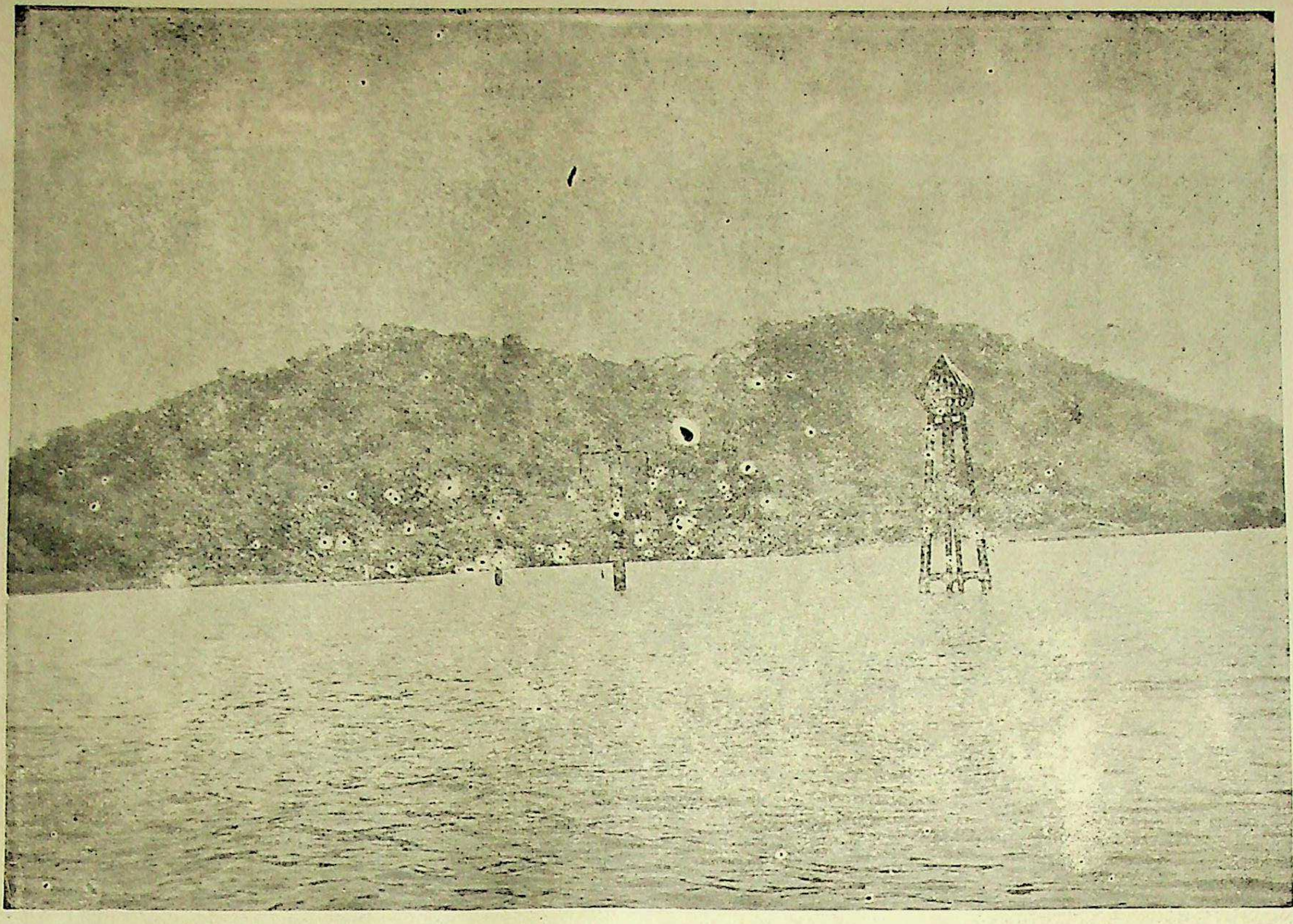

एलिफैण्टा द्वीप की पहाड़ियाँ : दूसरा दृश्य
फलक सं० २ (पृ० सं० १)

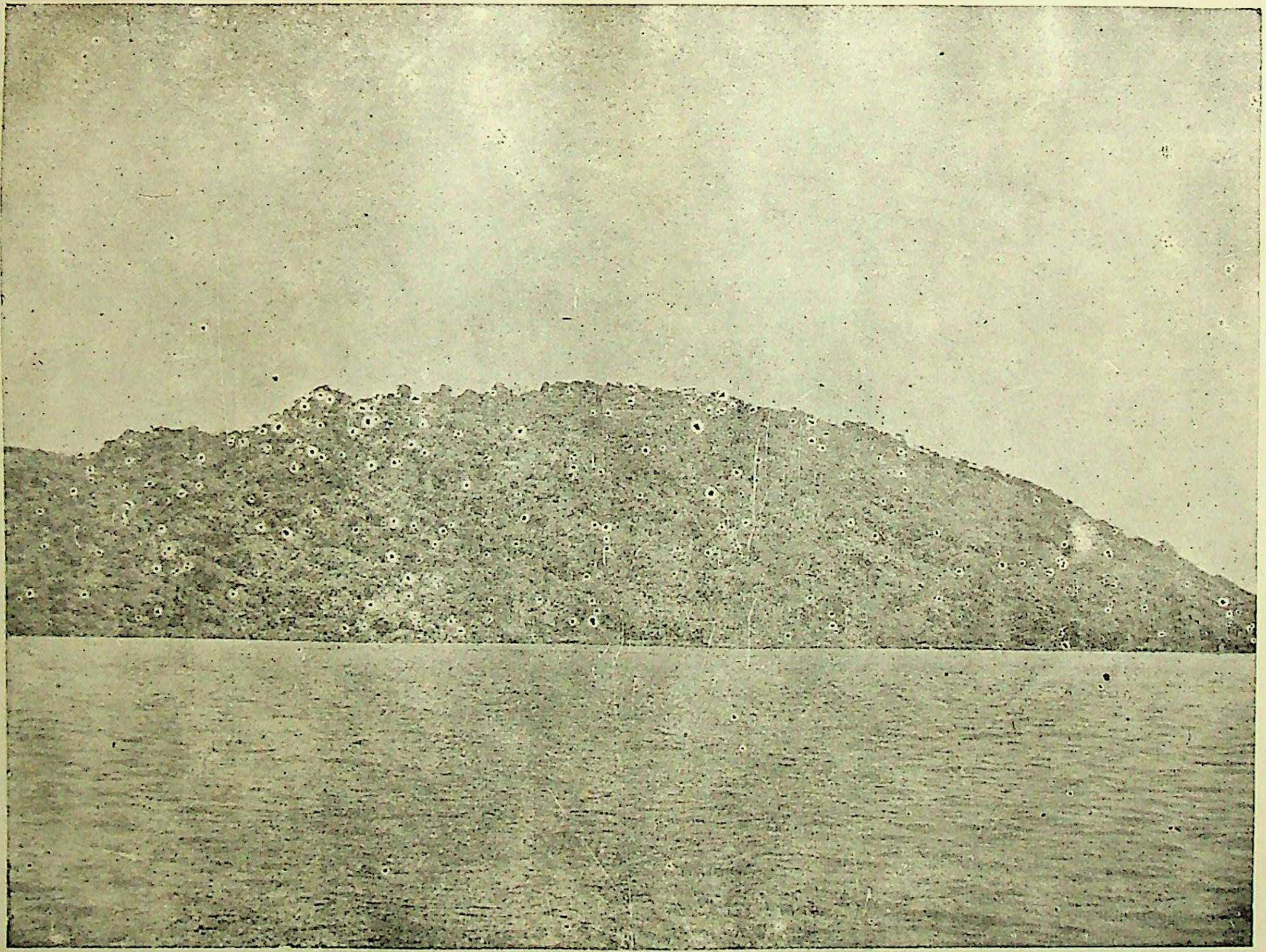

एलिफैण्टा द्वीप की पश्चिमी पहाड़ी, जिसमें मुख्य लयण है।
फलक-सं० ३ (पृ० सं० १)

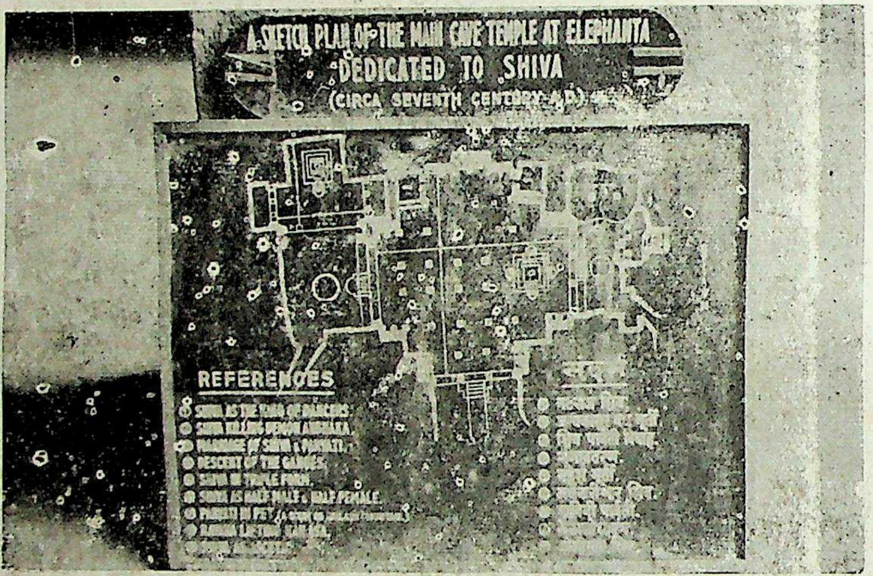

एलिफैण्टा के मुख्य मन्दिर का स्केच प्लान

फलक-सं० ४ (पृ० सं० १, ५)

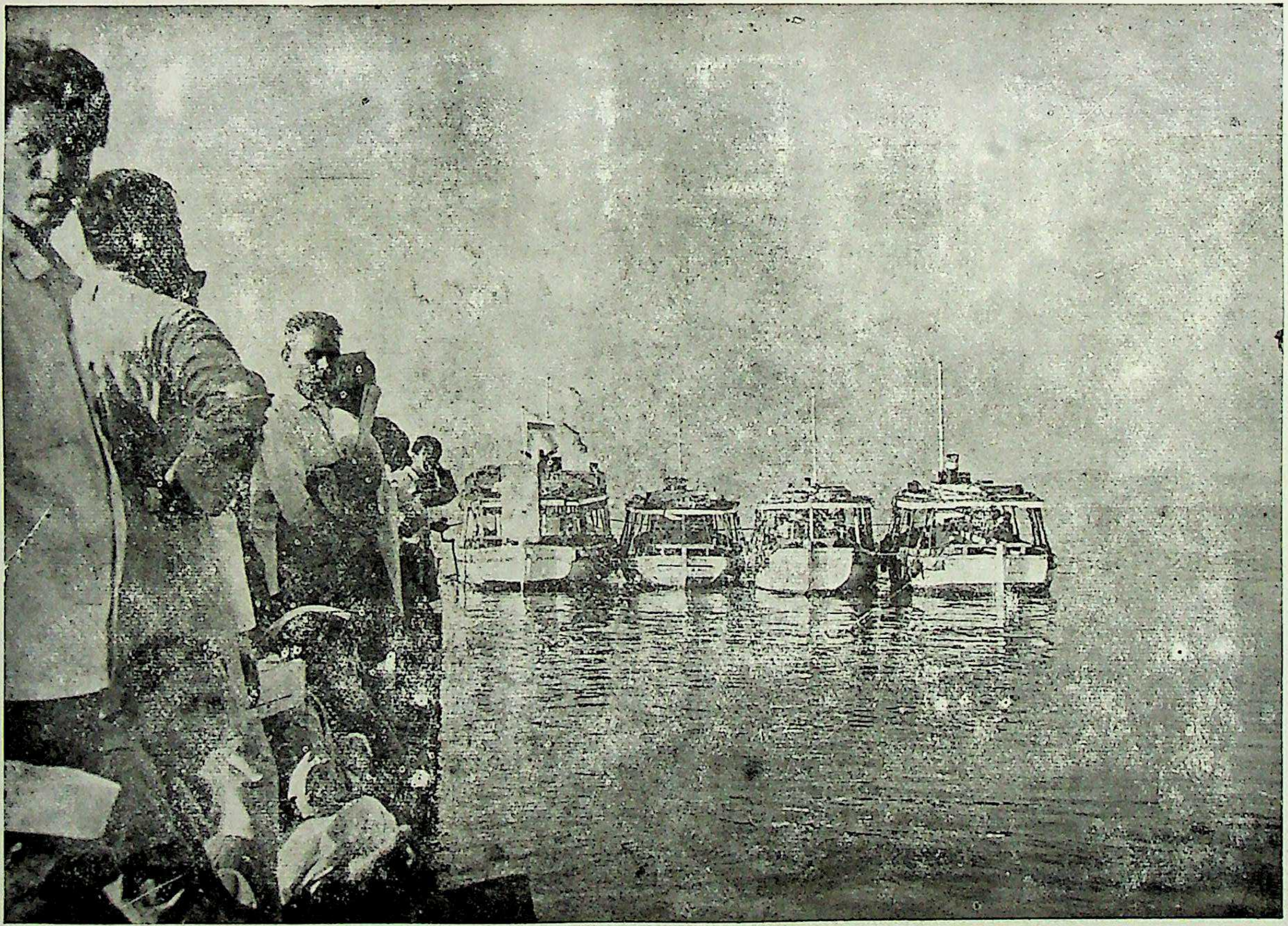

एलिफंण्टा द्वीप पर पहुँचे मोटर लांच

फलक-सं० ४

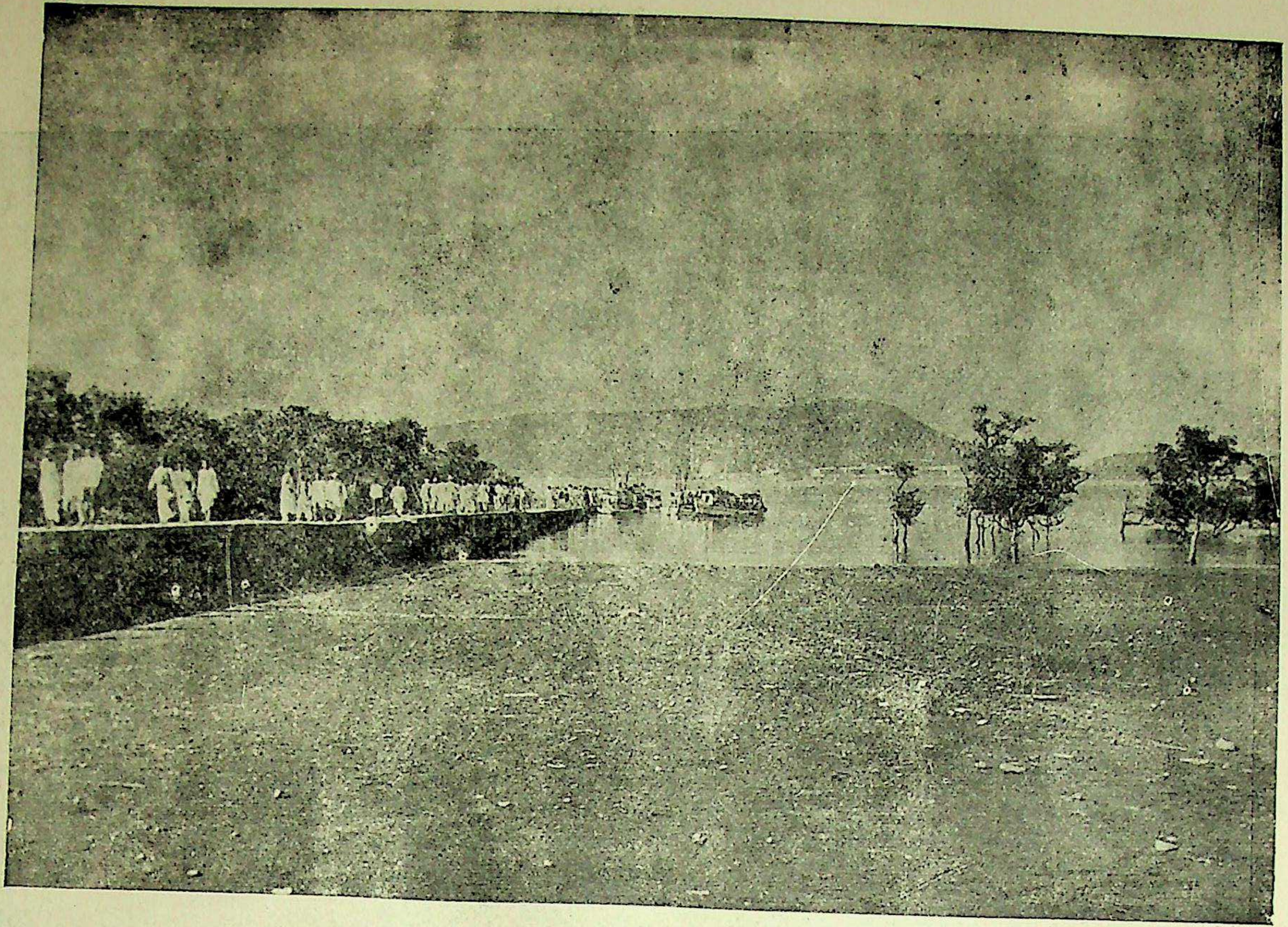

जेट्टी से लयण की ओर
फलक-सं० ५ (पृ० सं० ६)

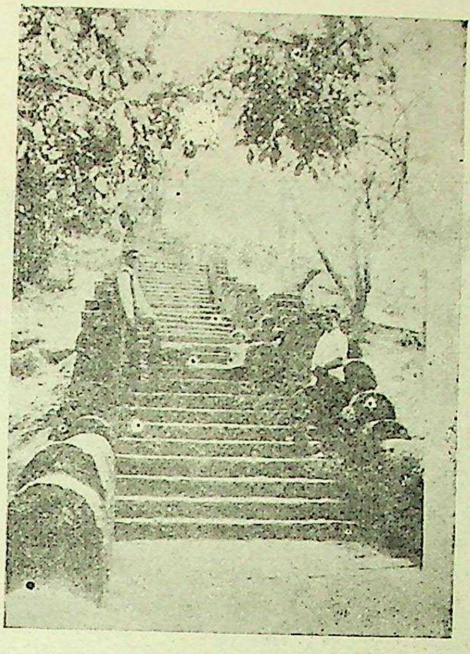

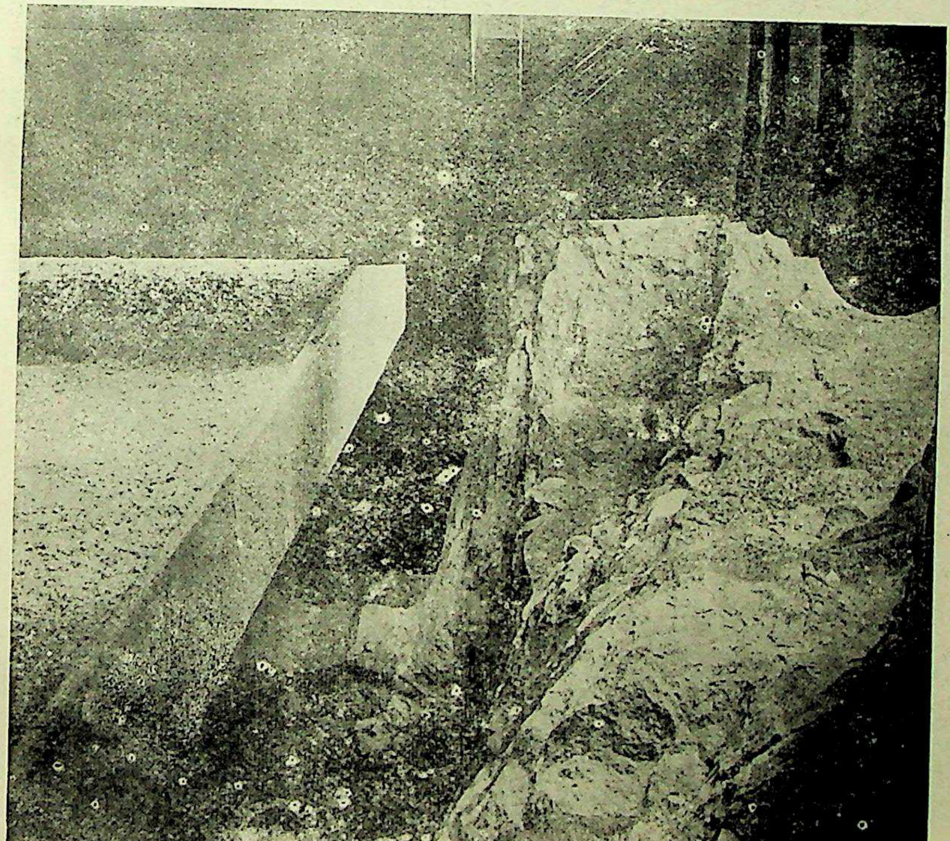

पहाड़ी पर पहुँचने की सीढ़ी

फलक-सं० ६ (पृ० सं० ५-६)

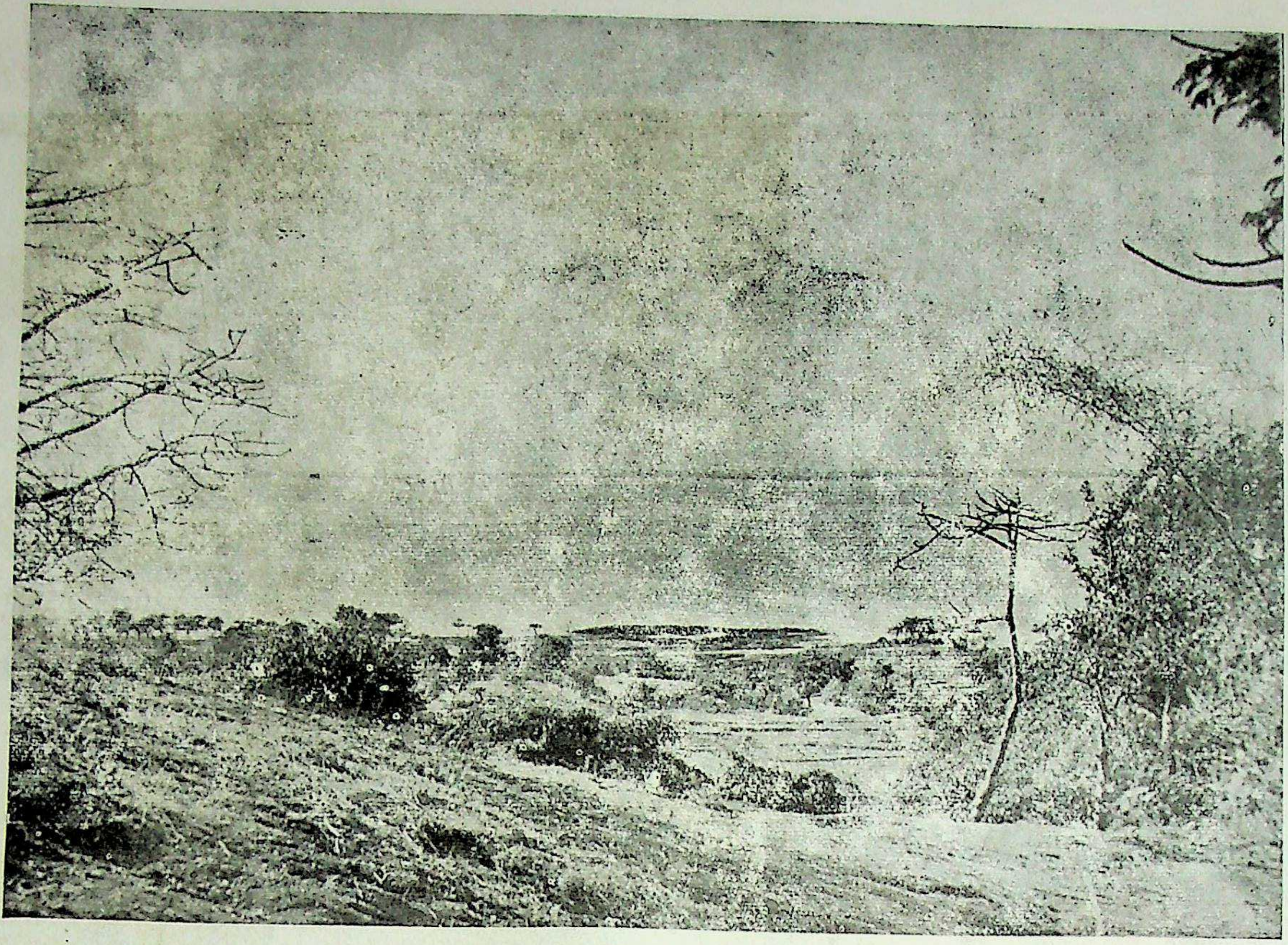

पश्चिमी पहाड़ी से समुद्र का दृश्य
फलक-स० ७ (पृ० सं० ६)

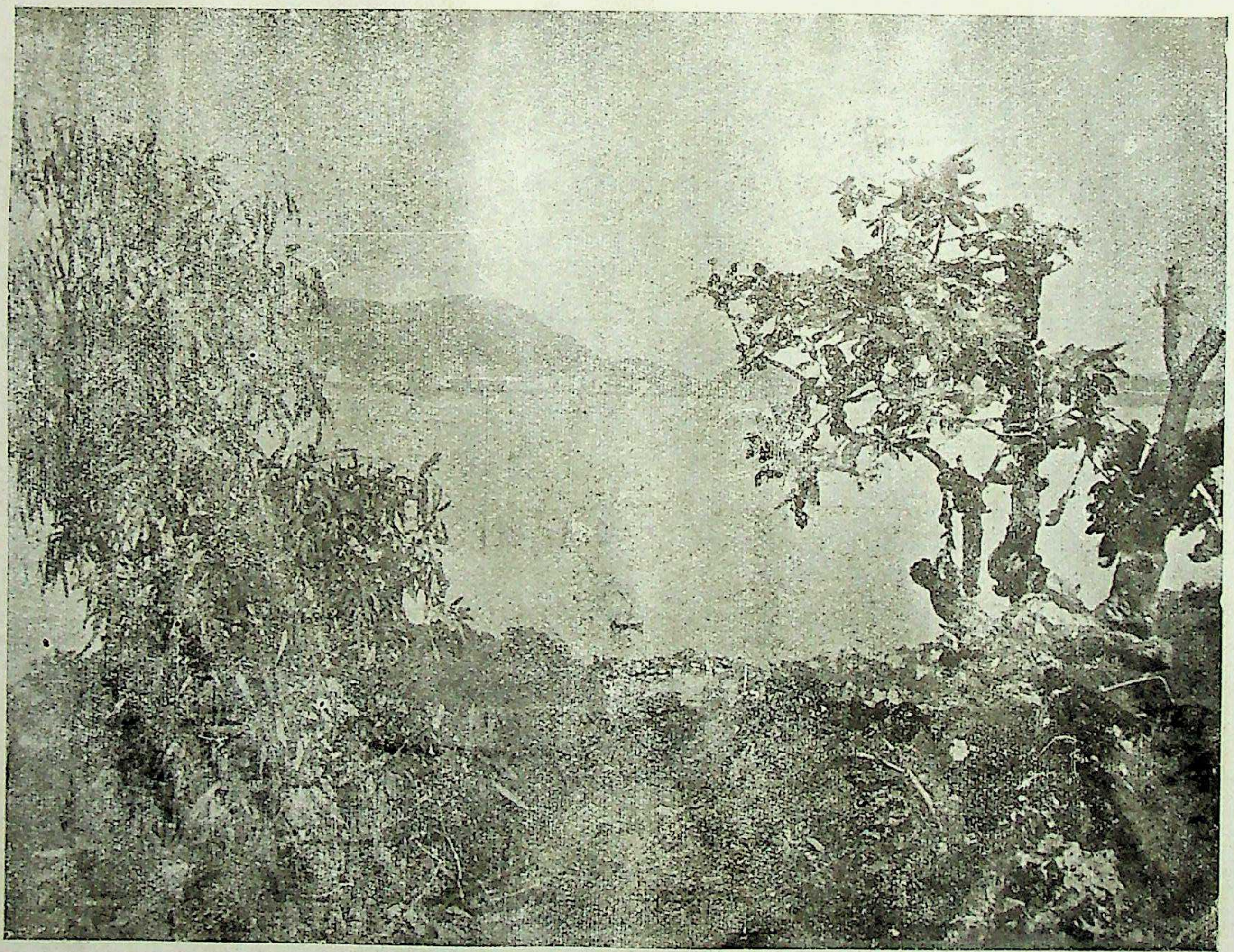

पश्चिमी पहाड़ी से बम्बई और निकटवर्त्ती पहाड़ियाँ
फलक-सं० ८ (पृ० सं० ६)

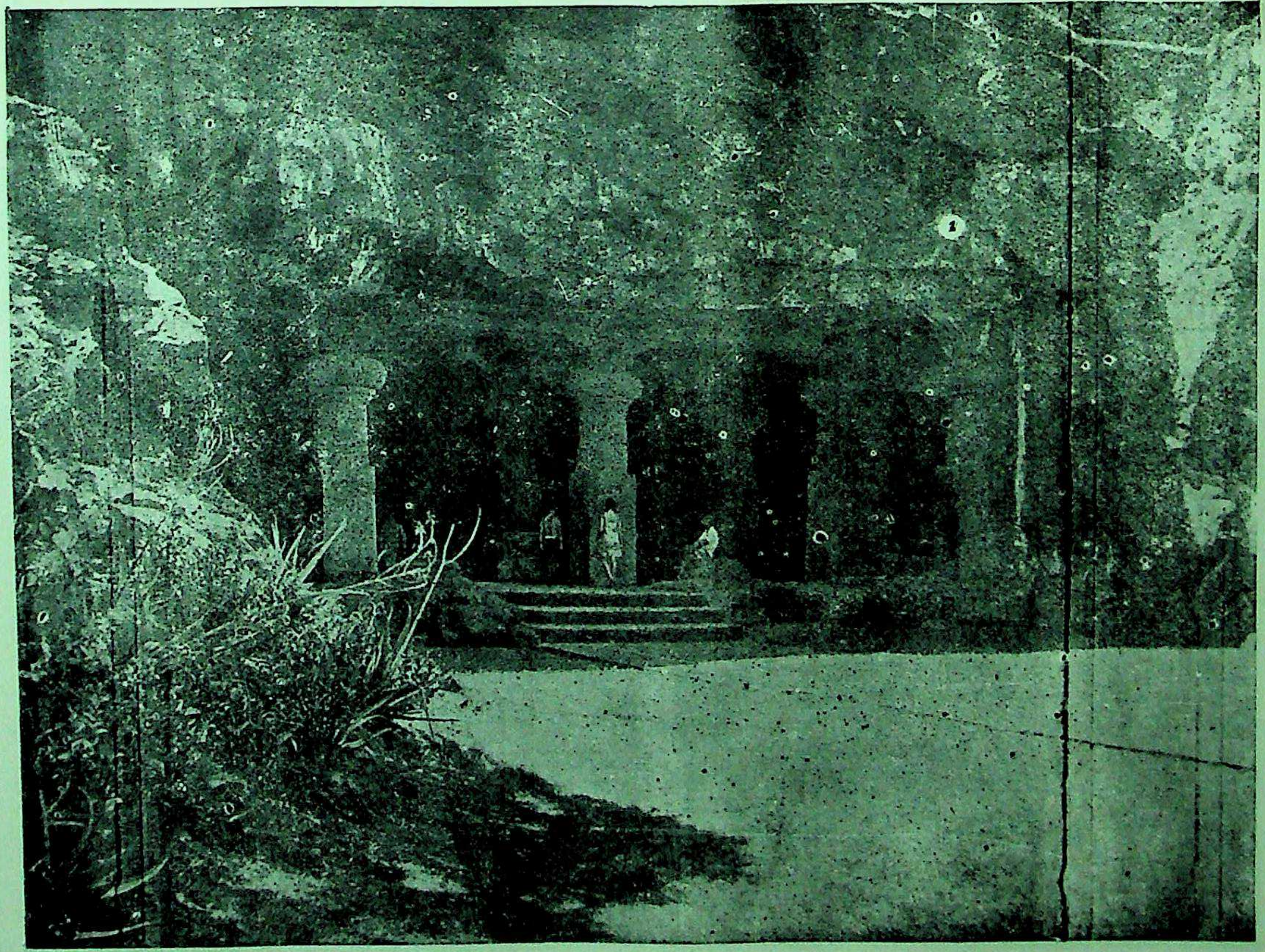

प्रथम लयण-प्रवेश-द्वार

फलक-सं० ९ (पृ० सं० १०-११)

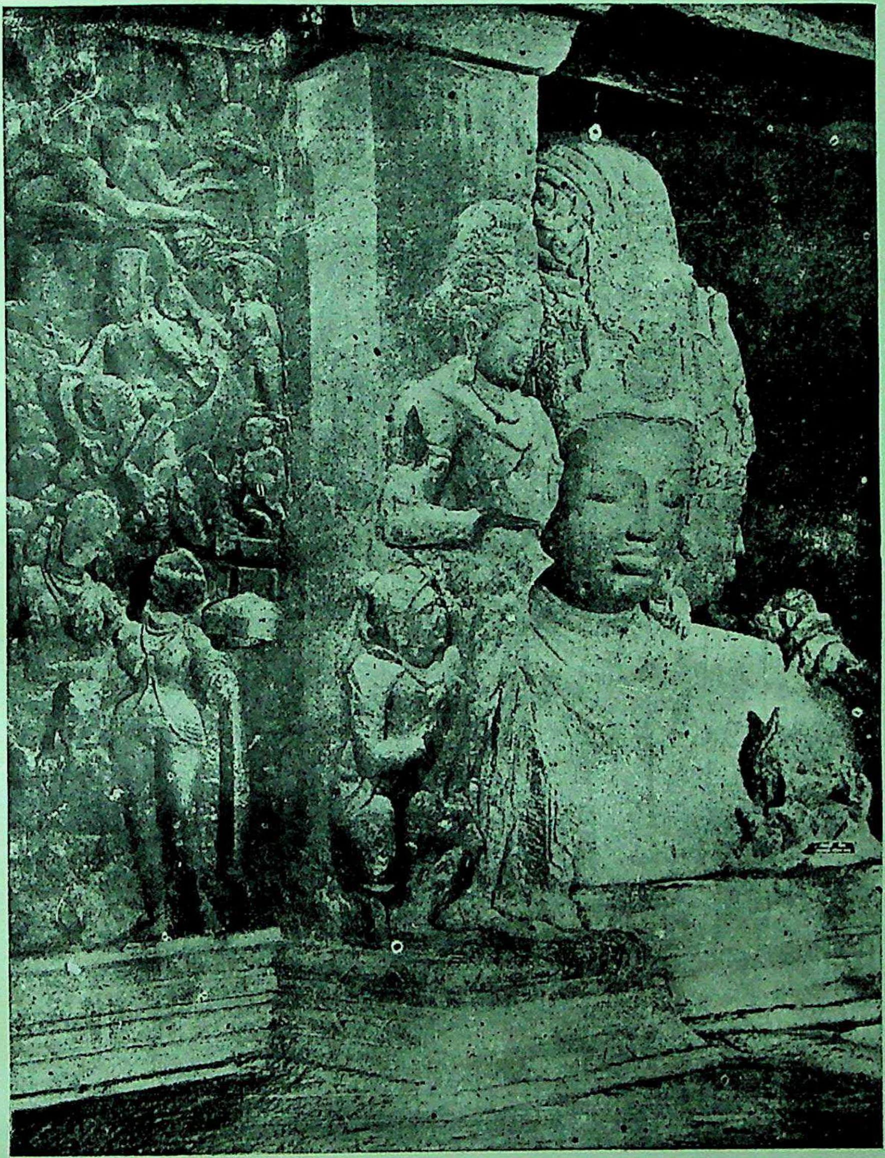

त्रिमूर्त्ति की बाईं ओर की मूर्त्तियां

फलक-सं० १० (पृ० सं० १५, १८, २१एवं ४९)

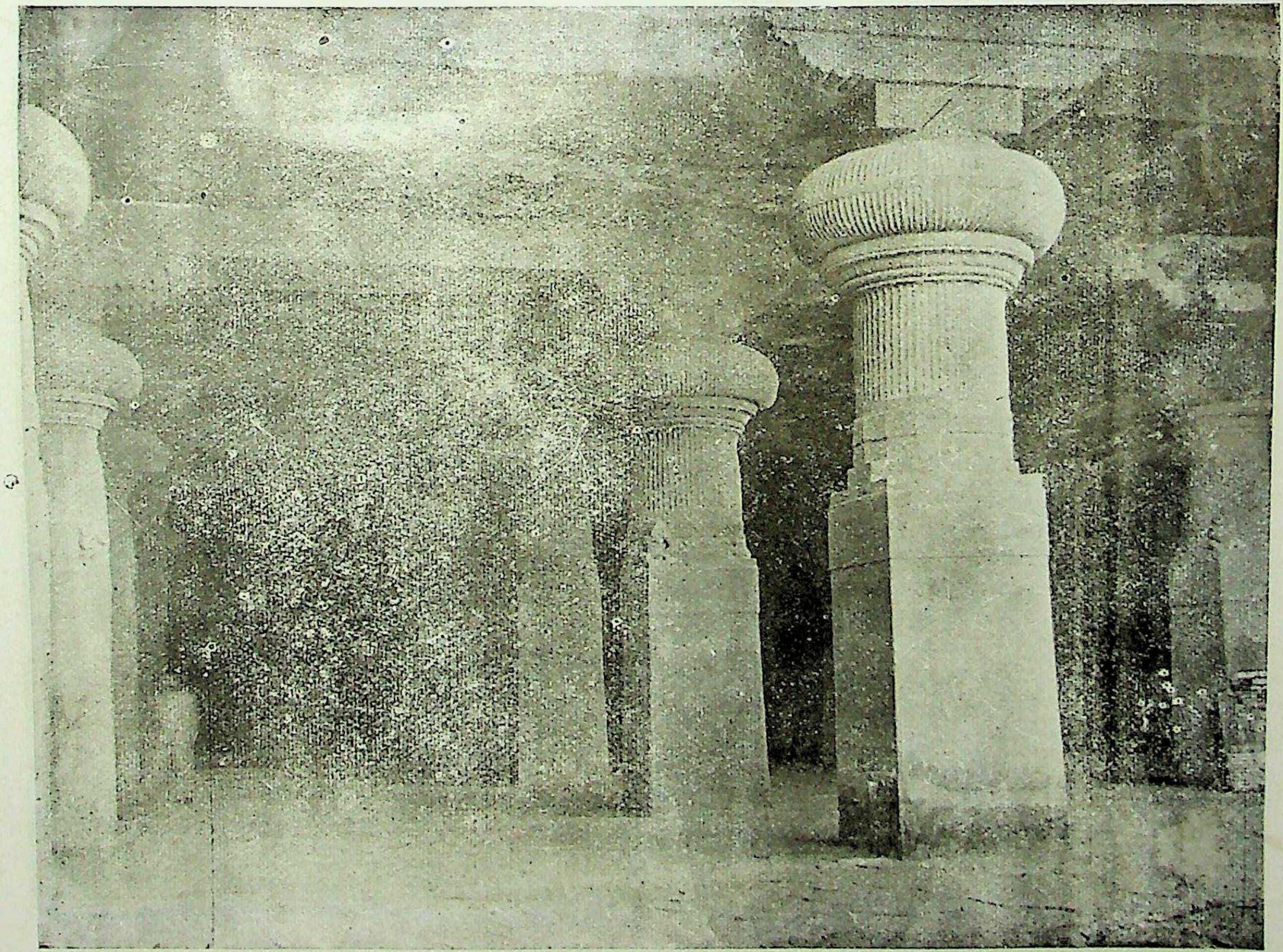

प्रथम लयण—मुख्य मण्डप

प.लक-सं० १० (पृ० सं० ११)

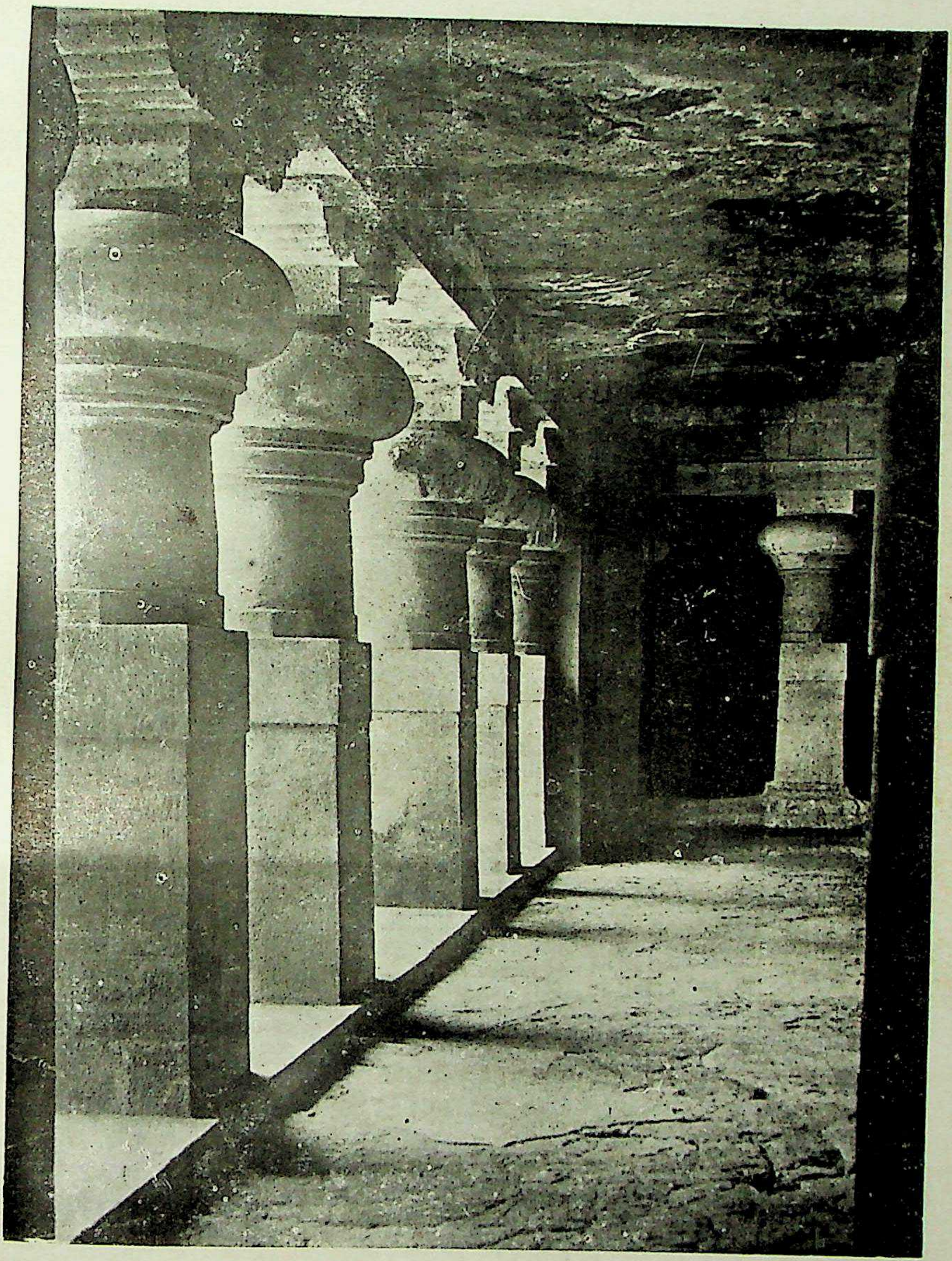

प्रथम लयण : मण्डप—पूर्वी अंश

फलक-सं० ११ (पृ० सं० ११)

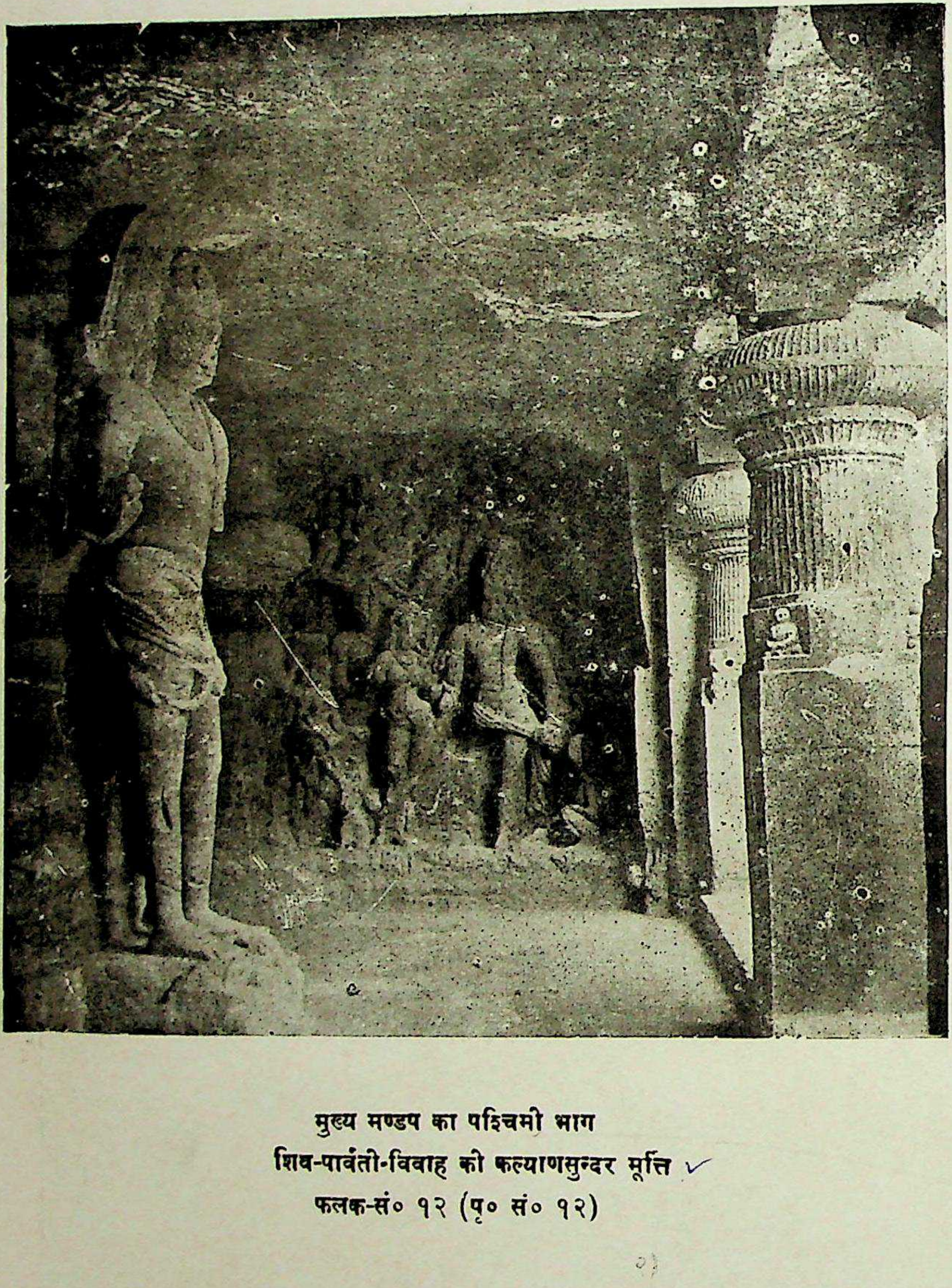

मुख्य मण्डप का पश्चिमी भाग
शिव-पार्वती-विवाह की कल्याणसुन्दर मूर्त्ति
फलक-सं० १२ (पृ० सं० १२)

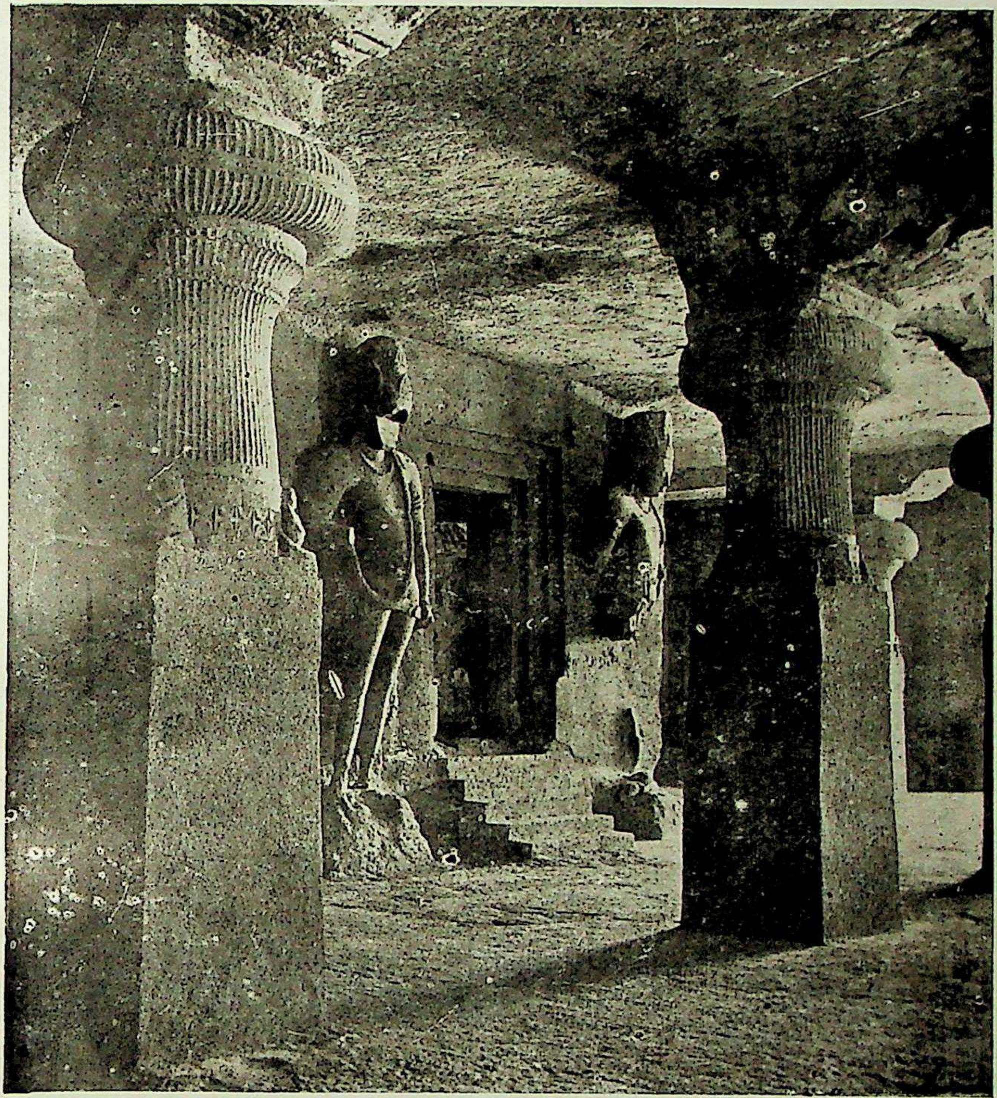

मण्डप के सम्मुख गर्भगृह—पूर्वी द्वार
फलक-सं० १३ (पृ० सं० १२)

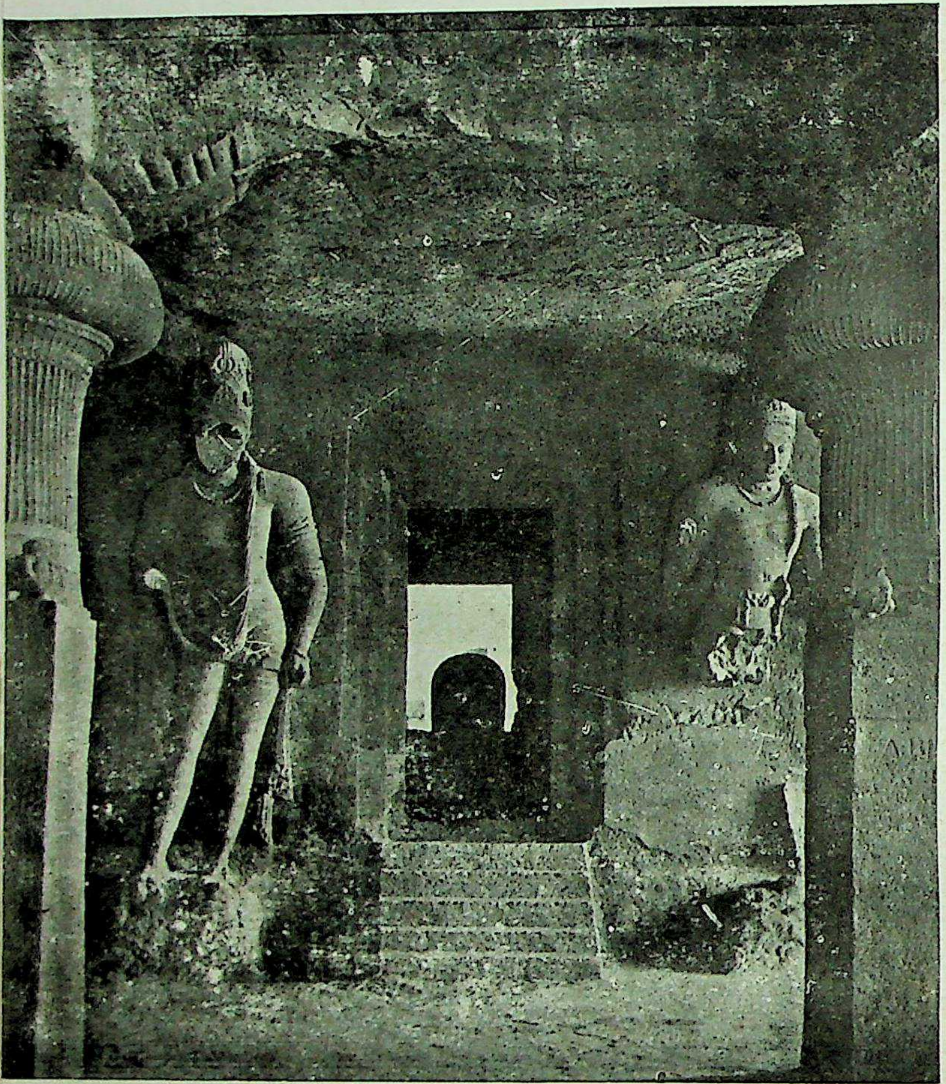

मण्डप के सम्मुख गर्भगृह (पूर्वी द्वार) में प्रतिष्ठित शिवलिङ्ग की एक झाँकी
फलक-सं० १३ (पृ० सं० १२)

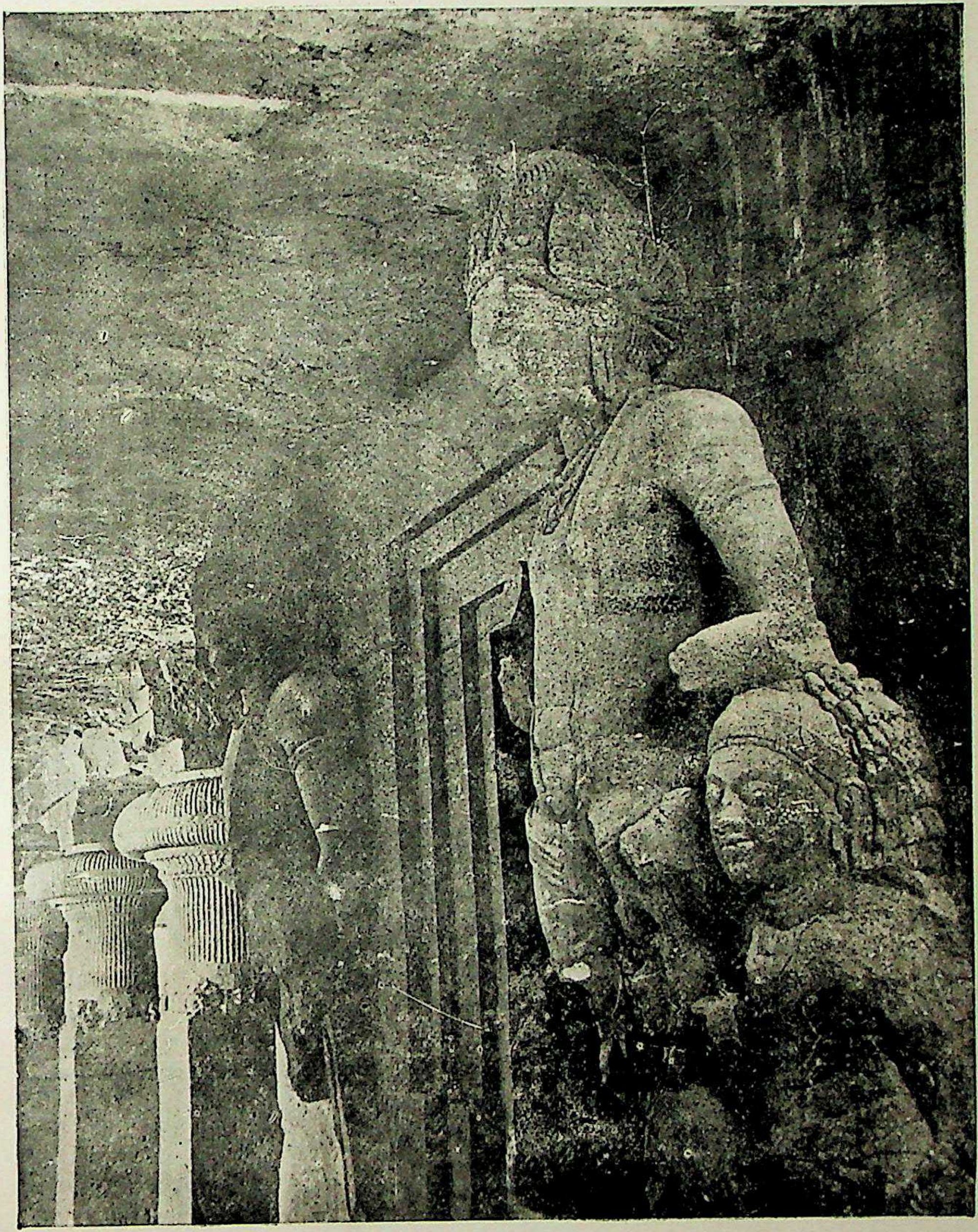

गर्भगृह—उत्तरी द्वार
फलक-सं० १४ (पृ० सं० १२)

गर्भगृह — पश्चिमी द्वार
फलक-सं० १५ (पृ० सं० १२)

वरसाती के पूर्वी पटल का दायाँ भाग
फलक-सं० १७ (पृ० सं० ११)

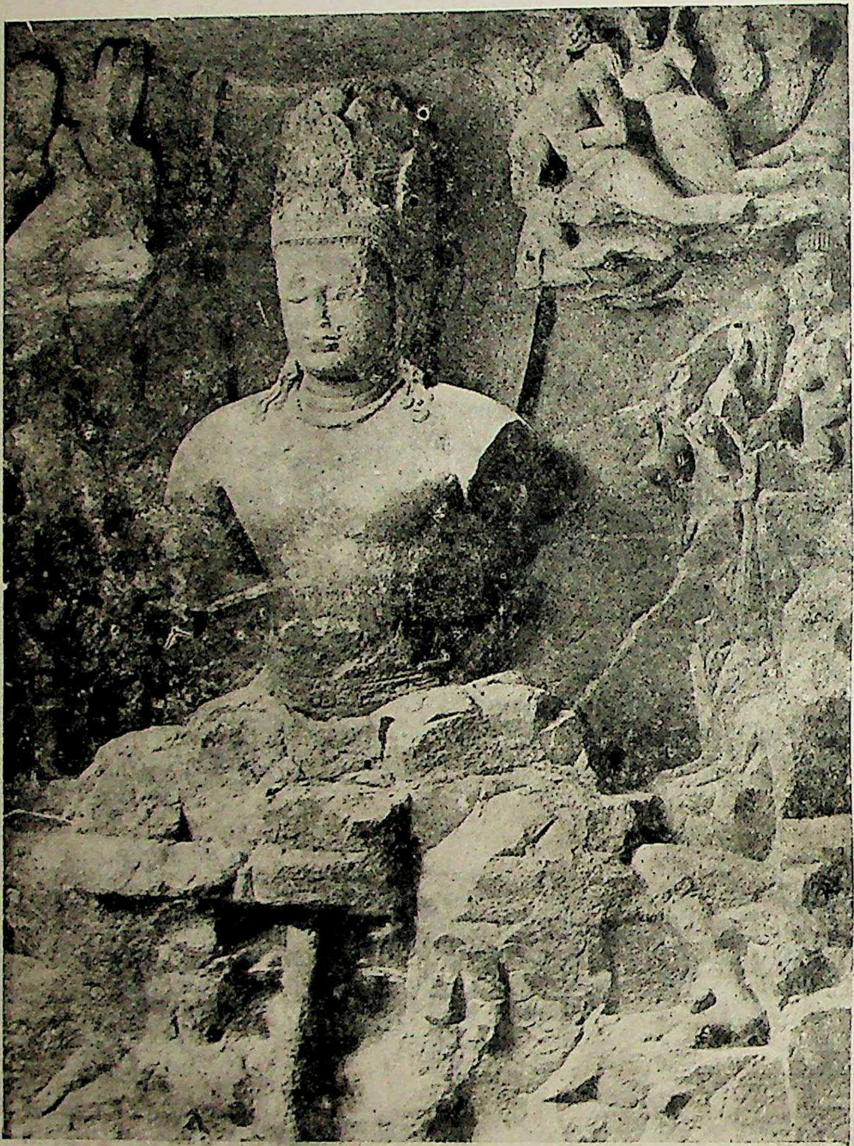

योगेश्वर लकुलीश
फलक-सं० १७ (पृ० सं० ११, १९)

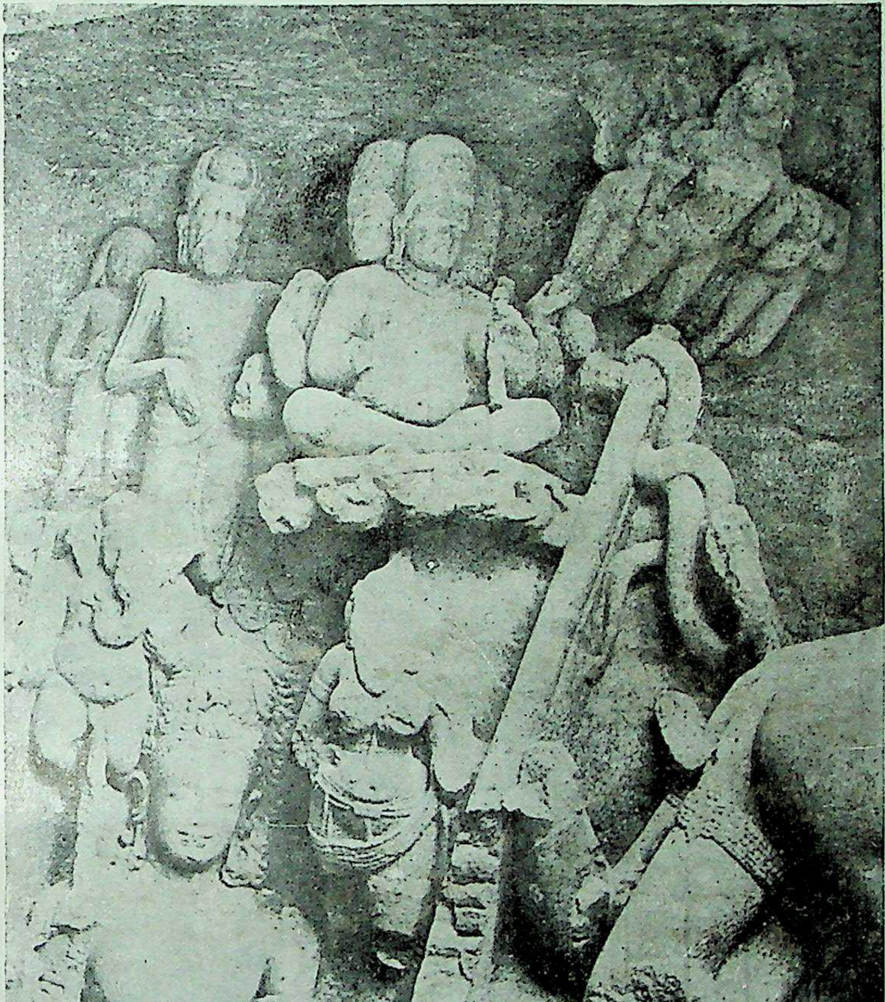

वरसाती के पश्चिमी पटल का बायाँ भाग

फलक-सं० १८ (पृ० सं० ११, २२, २६)

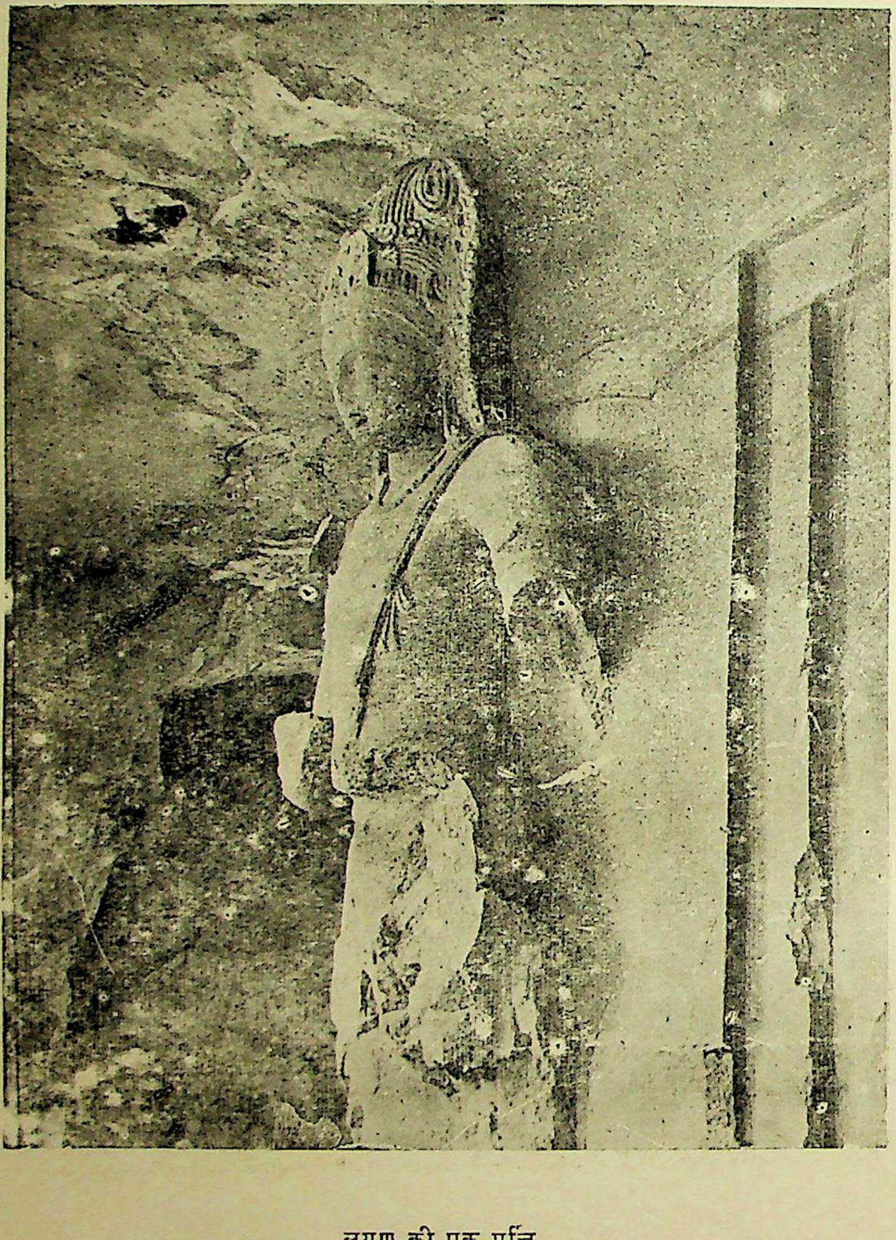

लयण की एक मूर्त्ति
फलक-सं० १८ (पृ० सं० ११, १६)

नृत्य नटराज के दक्षिणांग की एक झाँकी
फलक-सं० १८, १९,(पृ० सं० २२,२५)

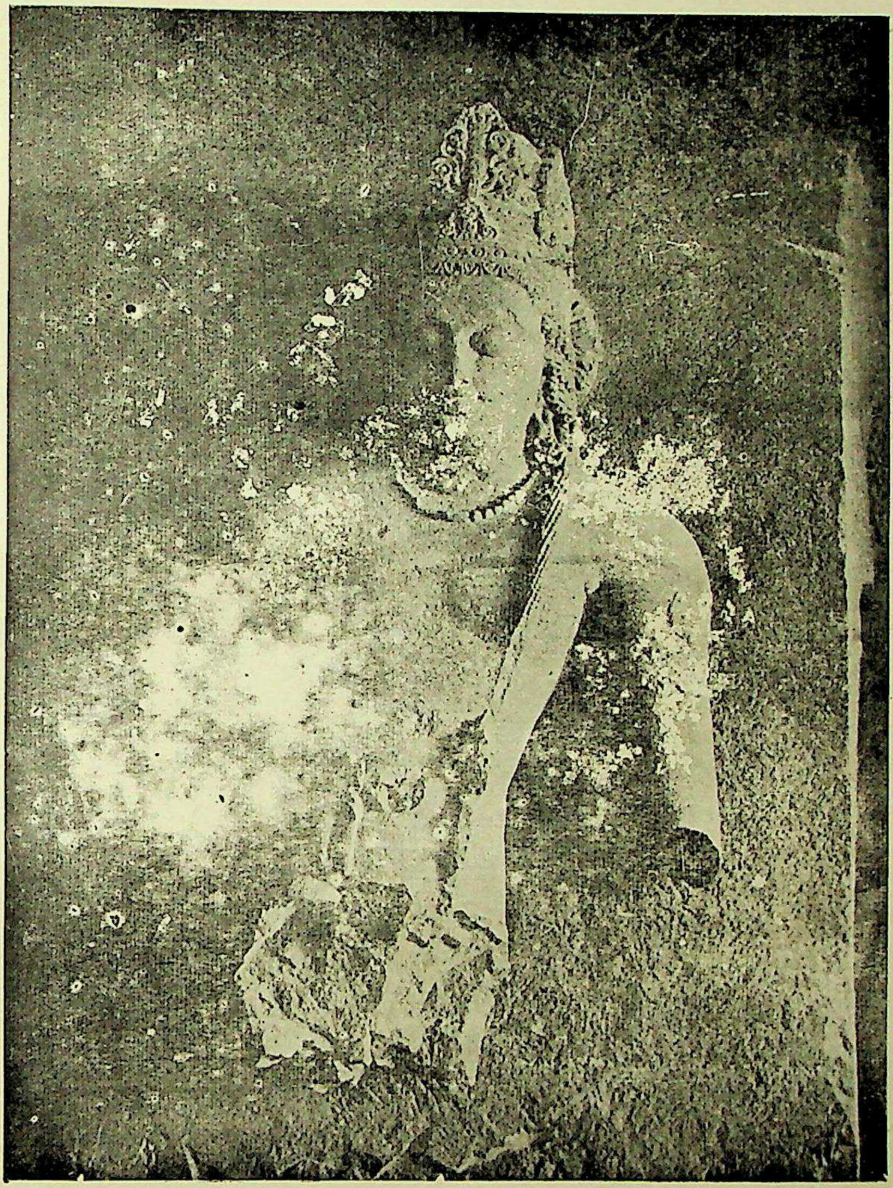

नटराज की एक मुद्रा :

फलक-सं० १९ (पृ० सं० ११ १९, २२)

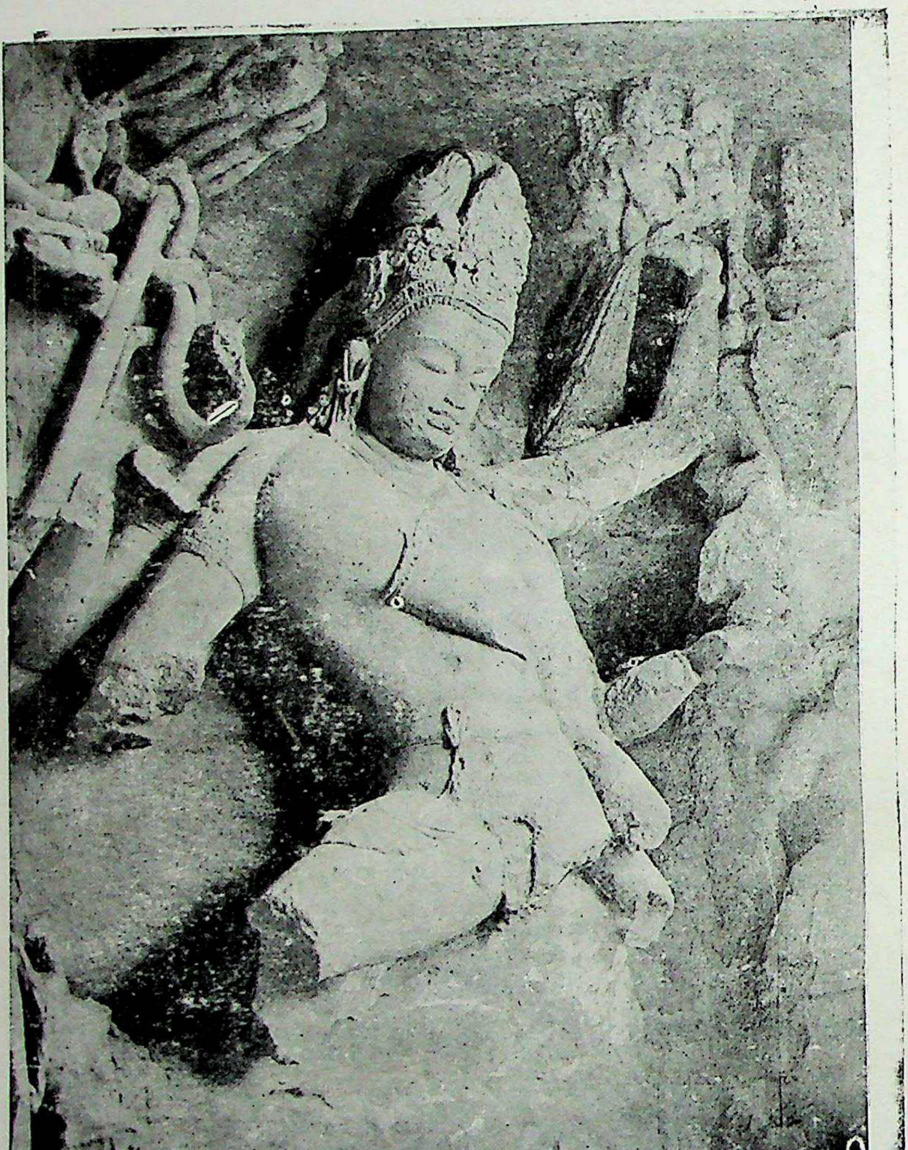

बरसाती का पश्चिमी पटल : नृत्यरत नटराज के सम्मुख की एक झाँकी

फलक सं० १९ पृ० सं० ११, २२)

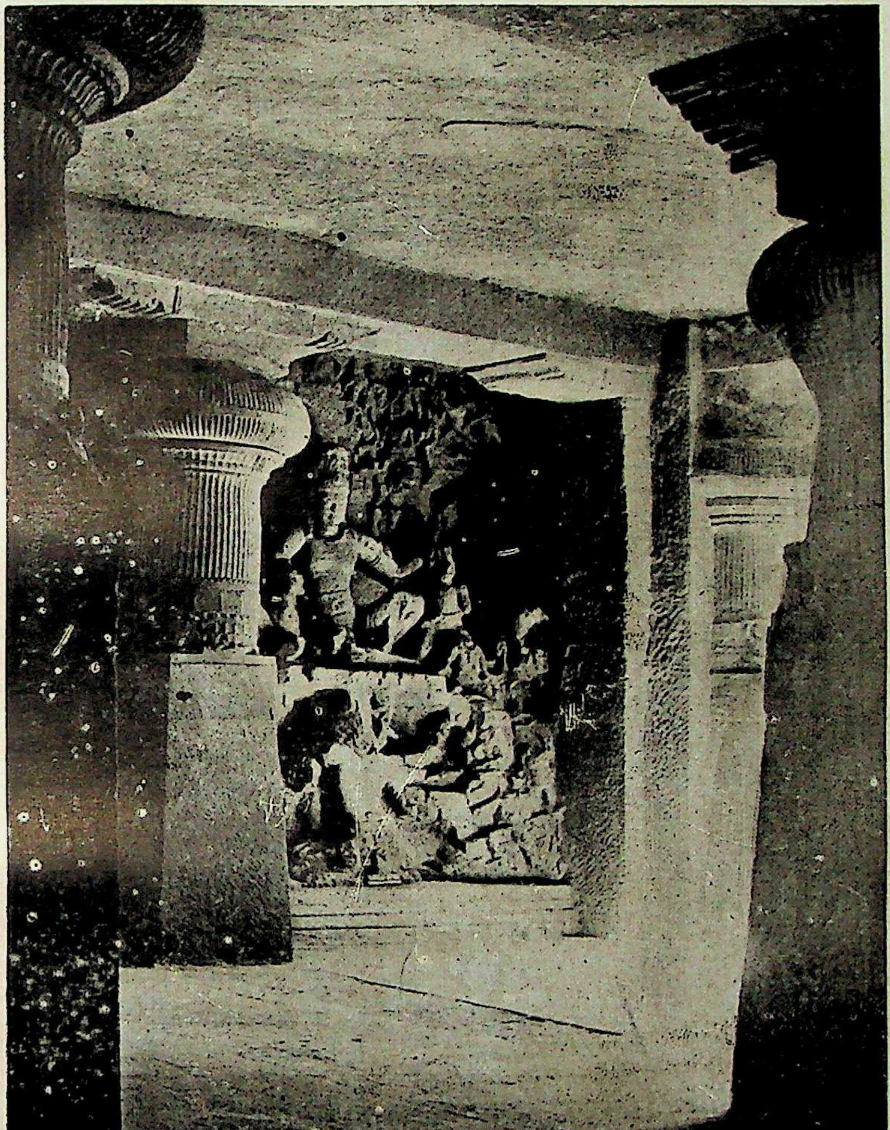

रावण-दर्प-दलन मूर्ति
[मण्डप की उत्तरी दीवार का पूर्वी पटल ।
फलक सं० २० पृ० सं० १७)

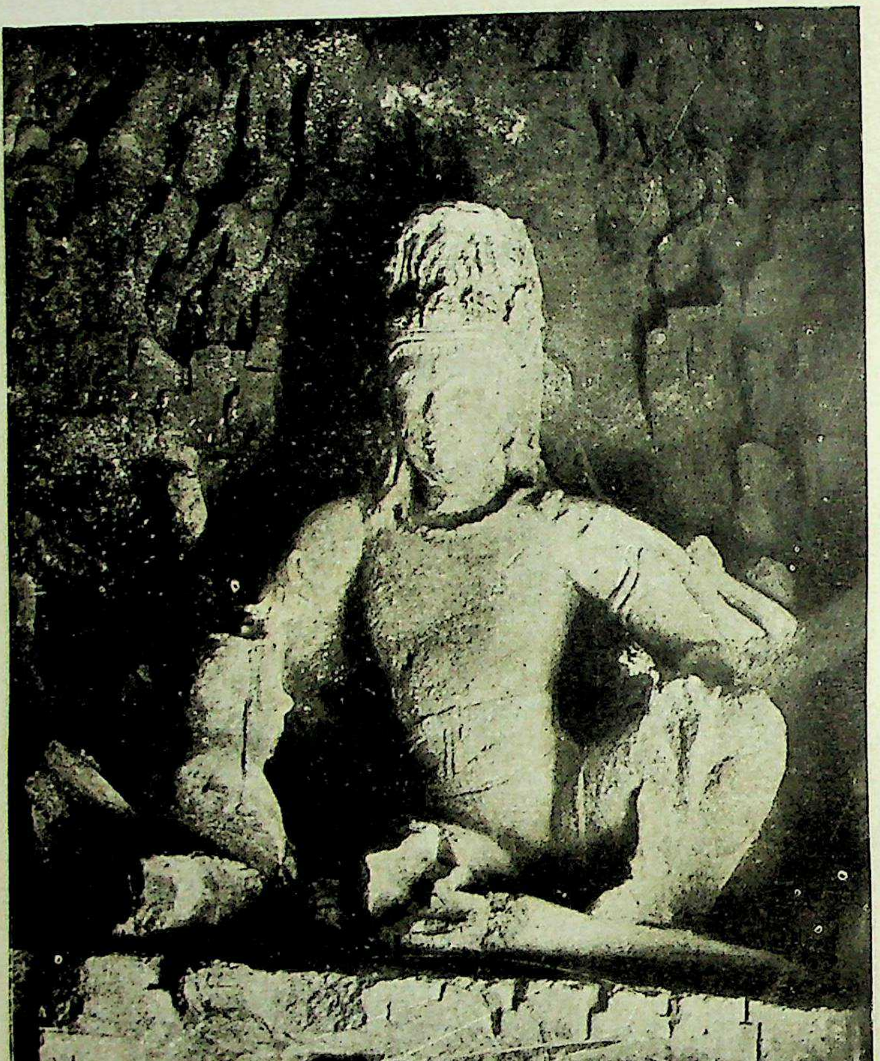

रावण द्वारा कैलाशोत्तोलन का एक दृश्य
मण्डप की उत्तरी दीवार के पूर्वी पटल का मुख्य अंश
फलक-सं० २१ (पृ० सं० १२)

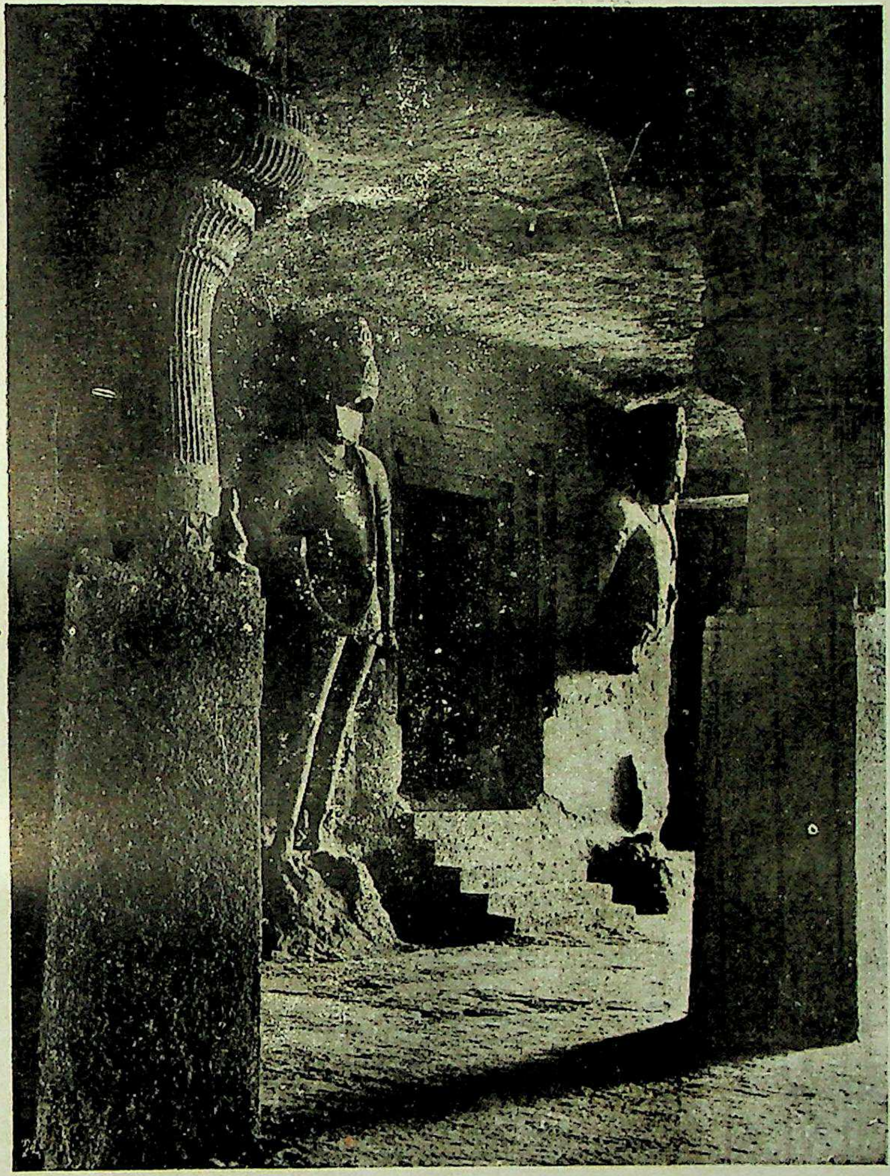

लयण की एक झांकी
फलक-सं० २२ (पृ० सं० १९)

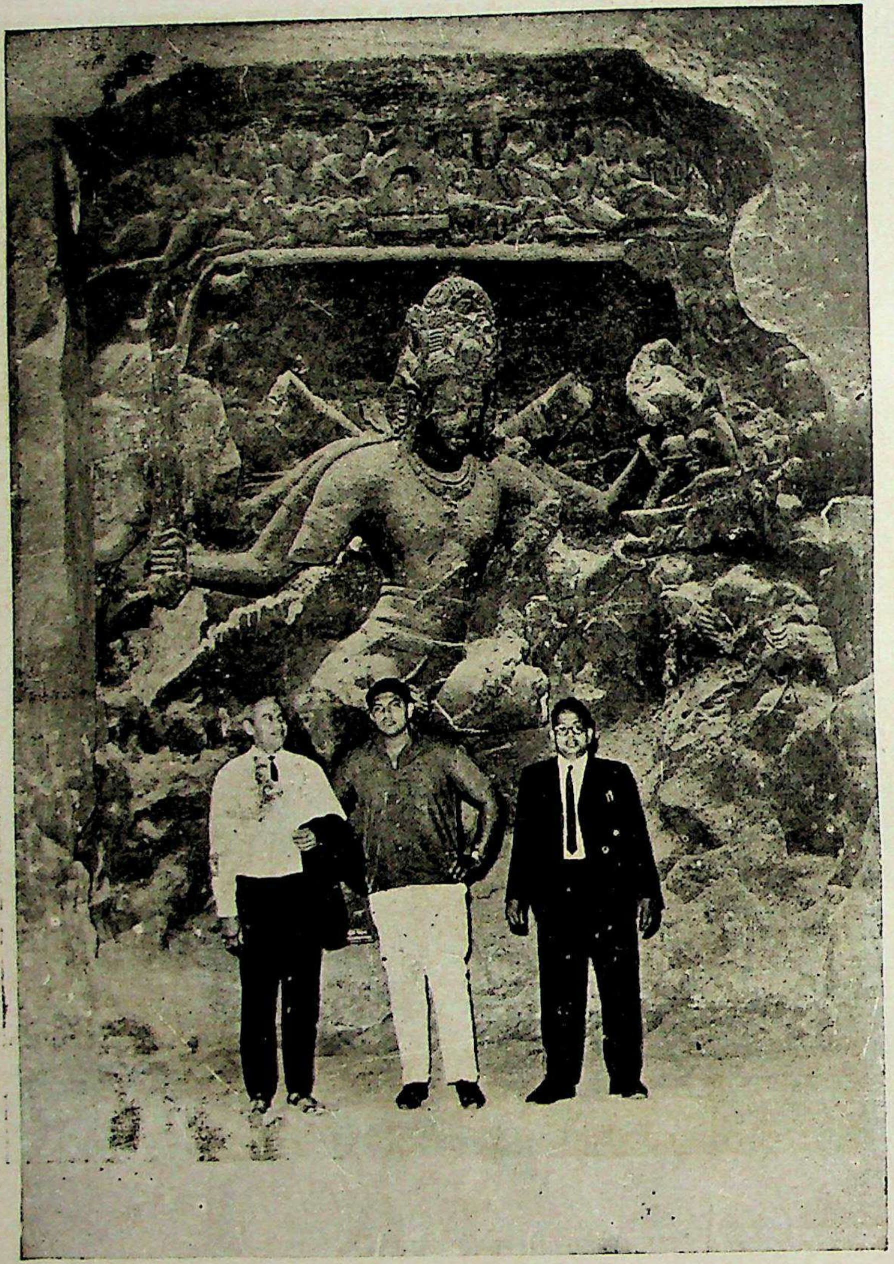

मण्डप की उत्तरी दीवार का पश्चिमी पटल : अन्धक-रिपु
लेखक, उनके साथ कनिष्ठ पुत्र अमरकान्त और श्री नर्मदेश्वर सिन्हा
फलक-सं० २२ (पृ० सं० १२, २७ एवं ३३)

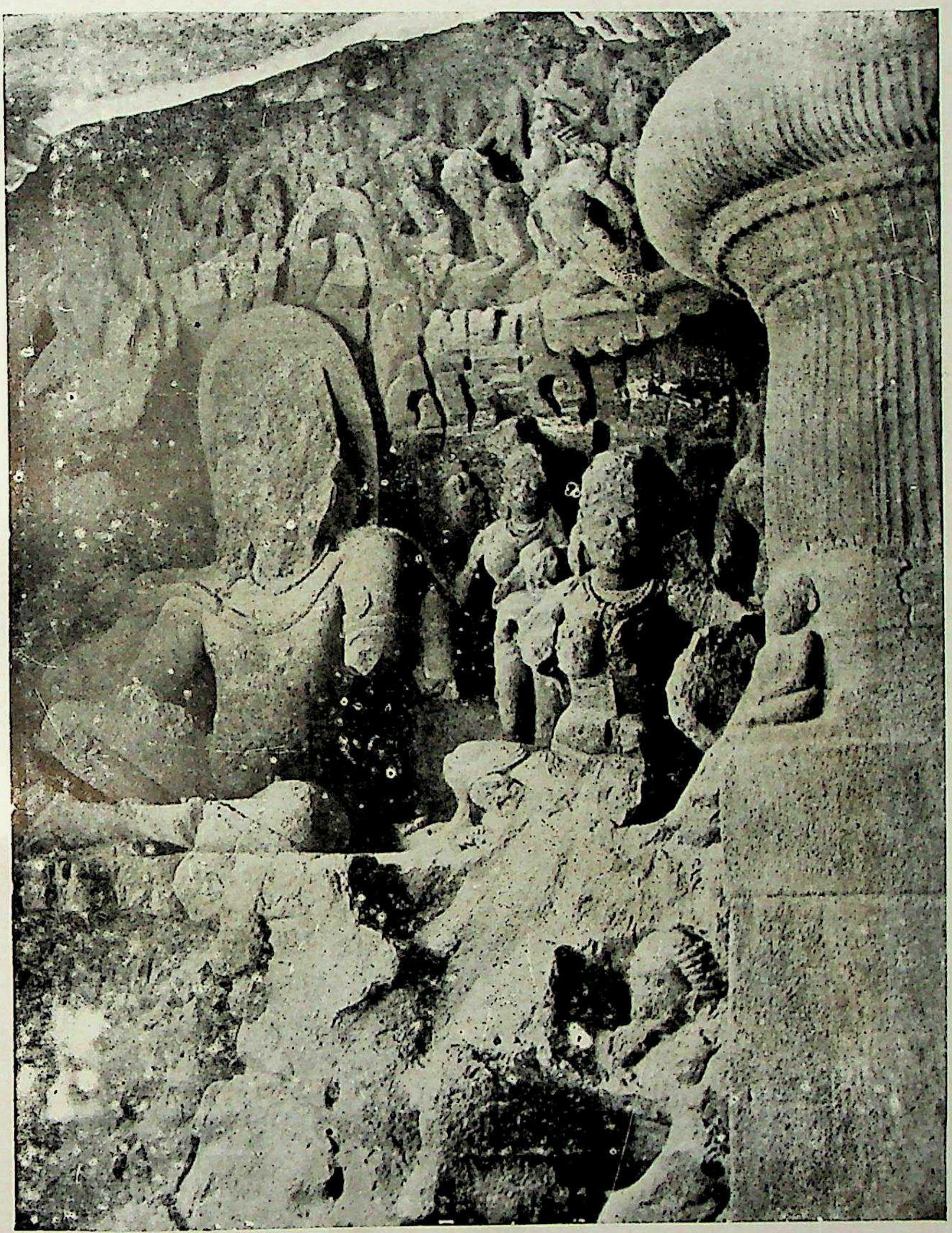

मण्डप की दक्षिणी दीवार के पूर्वी सिरे पर मानिनी पार्वती की मूर्त्ति
फलक-सं० २३ (पृ० सं० १२)

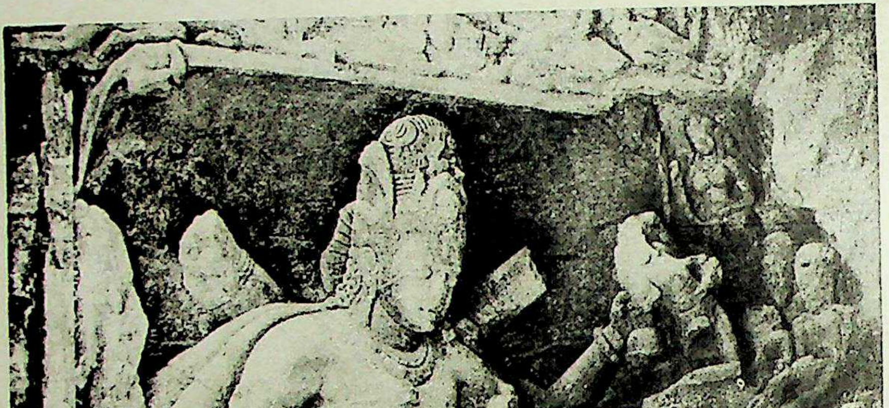

अन्धकासुर-वध

फलक-सं० २३ (पृ० सं० १२)

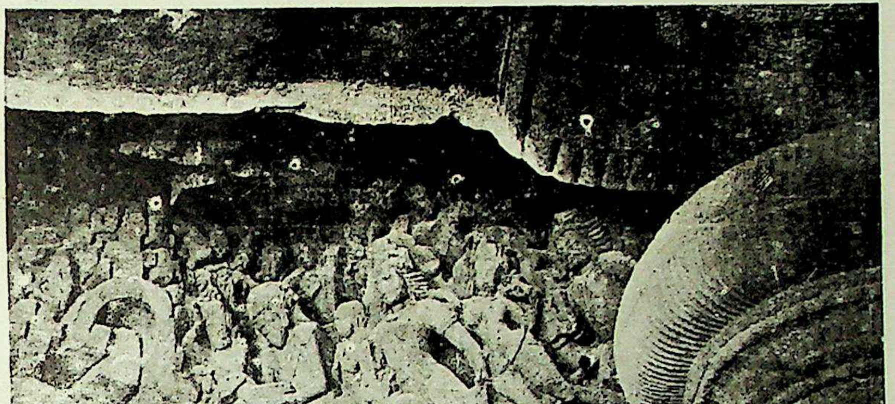

मण्डप की दक्षिणी दीवार के पूर्वी पटल में मूर्त्तित मानिनी पार्वती

फलक-सं० २४ (पृ० सं० १२)

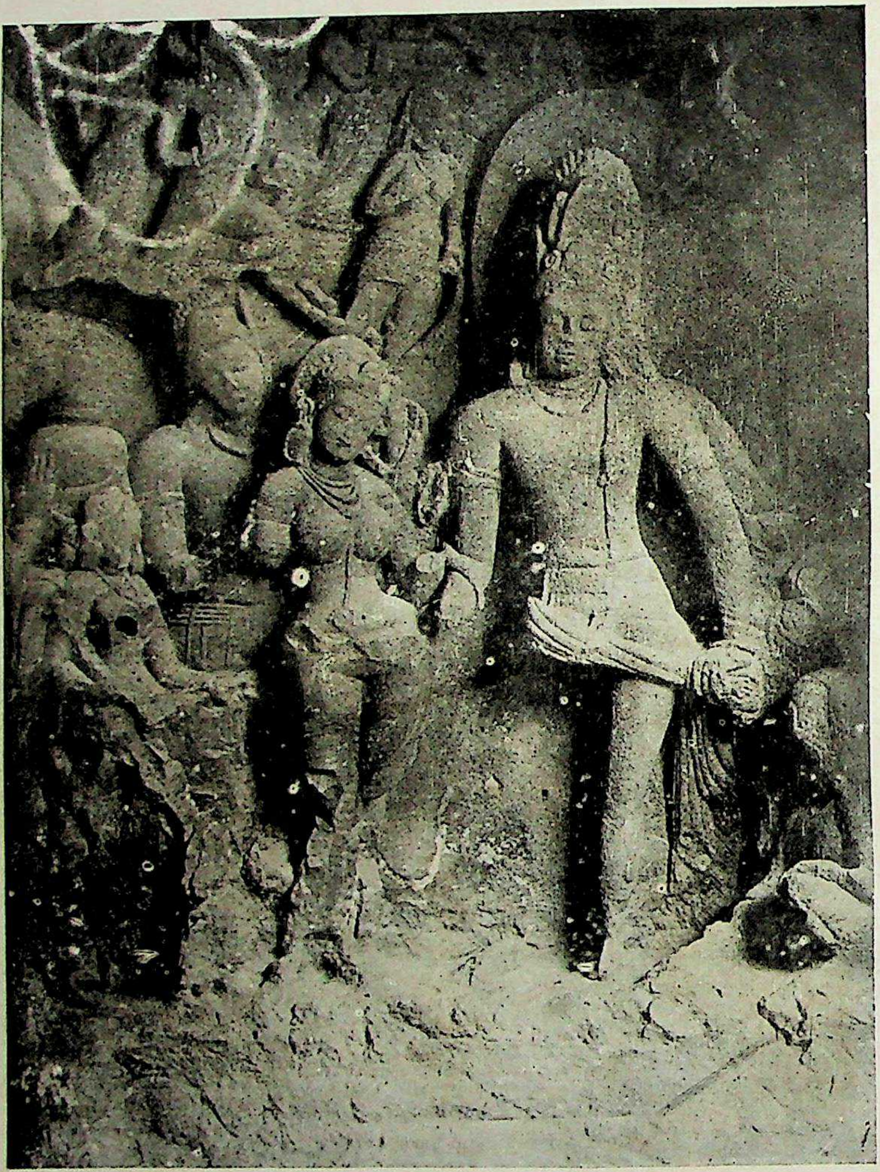

शिव-पार्वती-विवाह की कल्याणसुन्दर मूर्ति
(मण्डप की दक्षिणी दीवार का पश्चिमी पटल)
फलक-सं० २५ (पृ० सं० १२)

त्रिमूर्त्ति (अन्तराल के पीछे मध्य में)
फलक-सं० २६ (पृ० सं० १३)

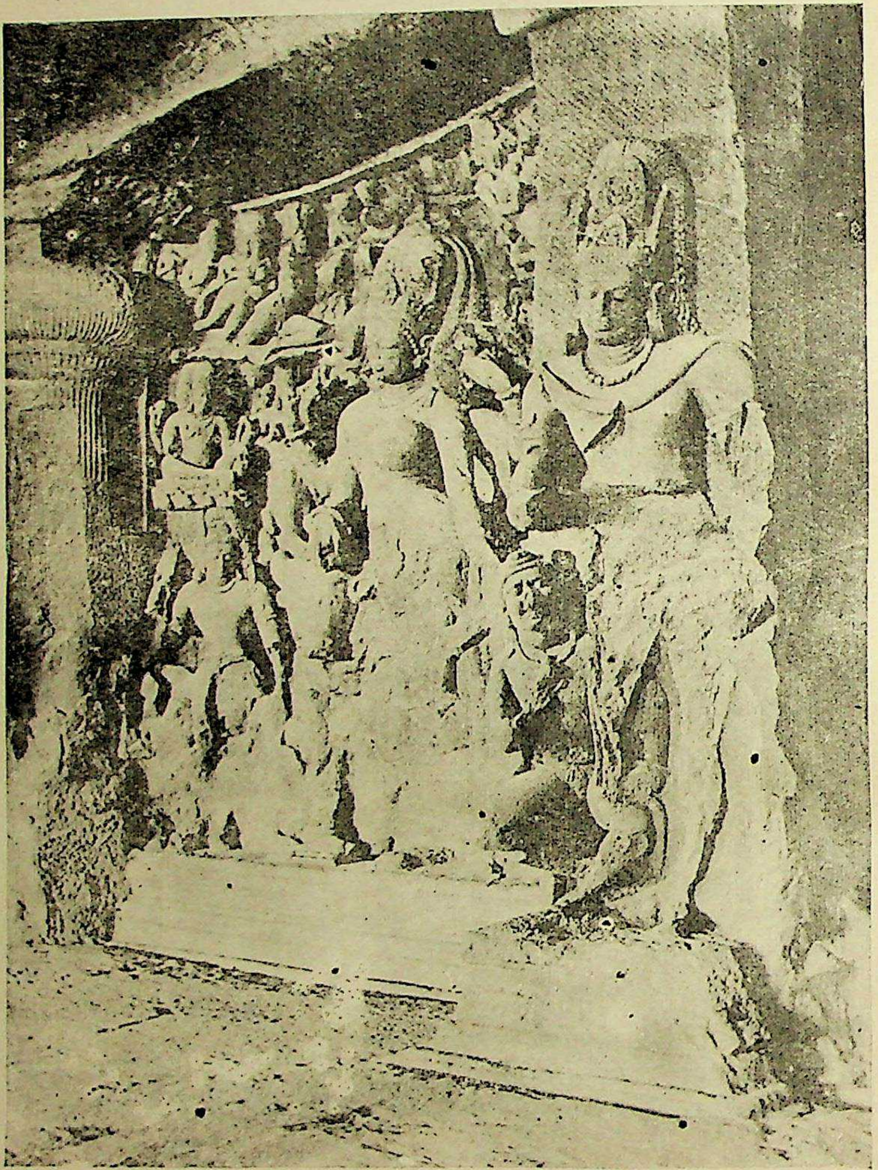

त्रिमूर्त्ति के वाम भाग का मूर्त्तन

फलक म० ०७ (पृ० सं० १३,

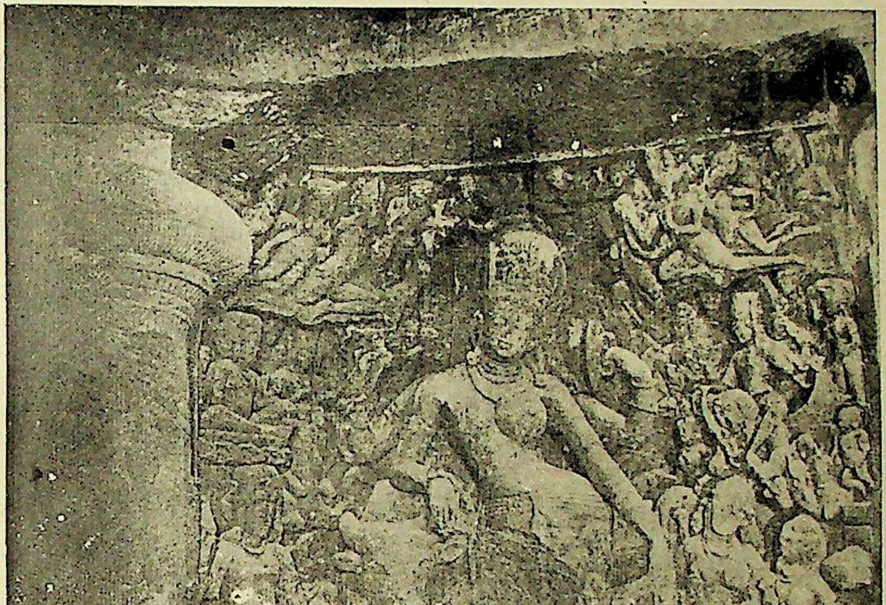

अर्धनारीश्वर शिव

फलक सं० २८ (पृ० सं० १३)

त्रिमूर्त्ति के दक्षिण-भाग का मूर्त्तन
फलक-सं० २९ (पृ० सं० १३)

गंगाधर शिव

फलक सं० ३० (पृ० स० १३, ४२)

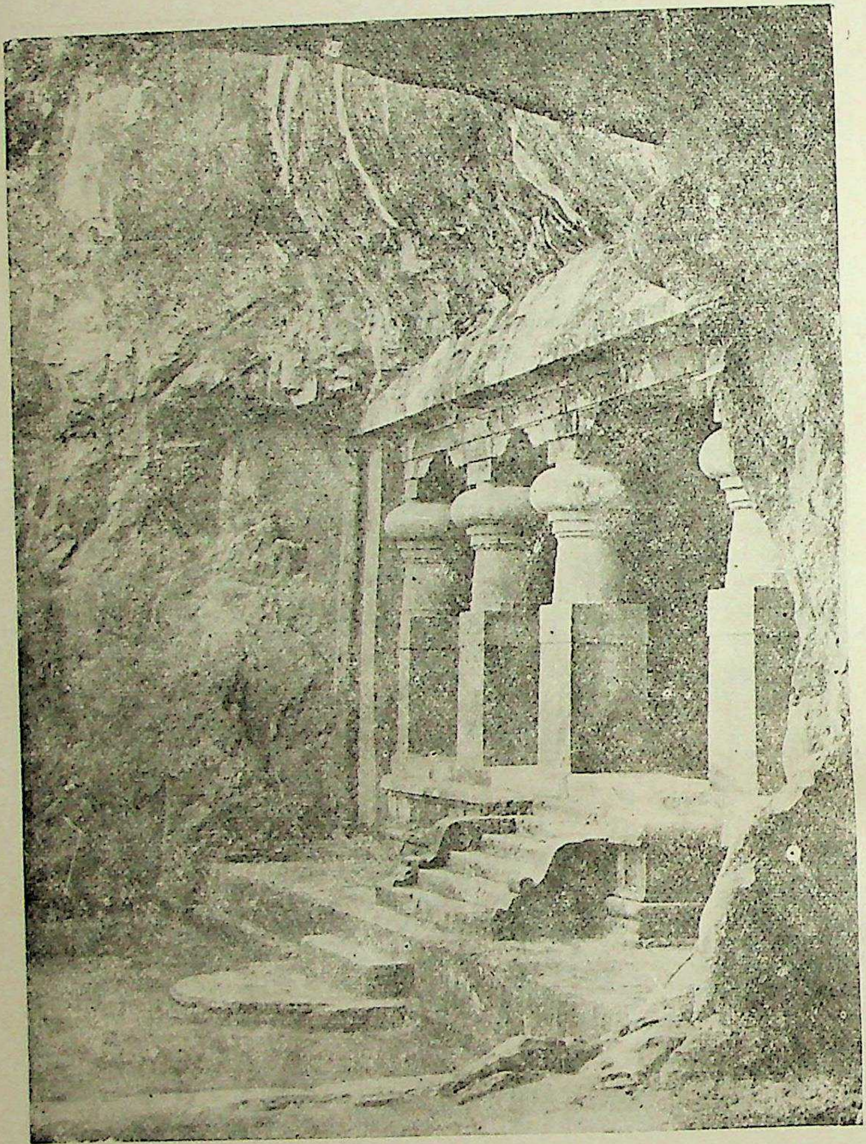

प्रथम लयण के पूर्वी खण्ड के शिव-मन्दिर का प्रवेश

फलक-सं० ३१ (पृ० सं० १७)

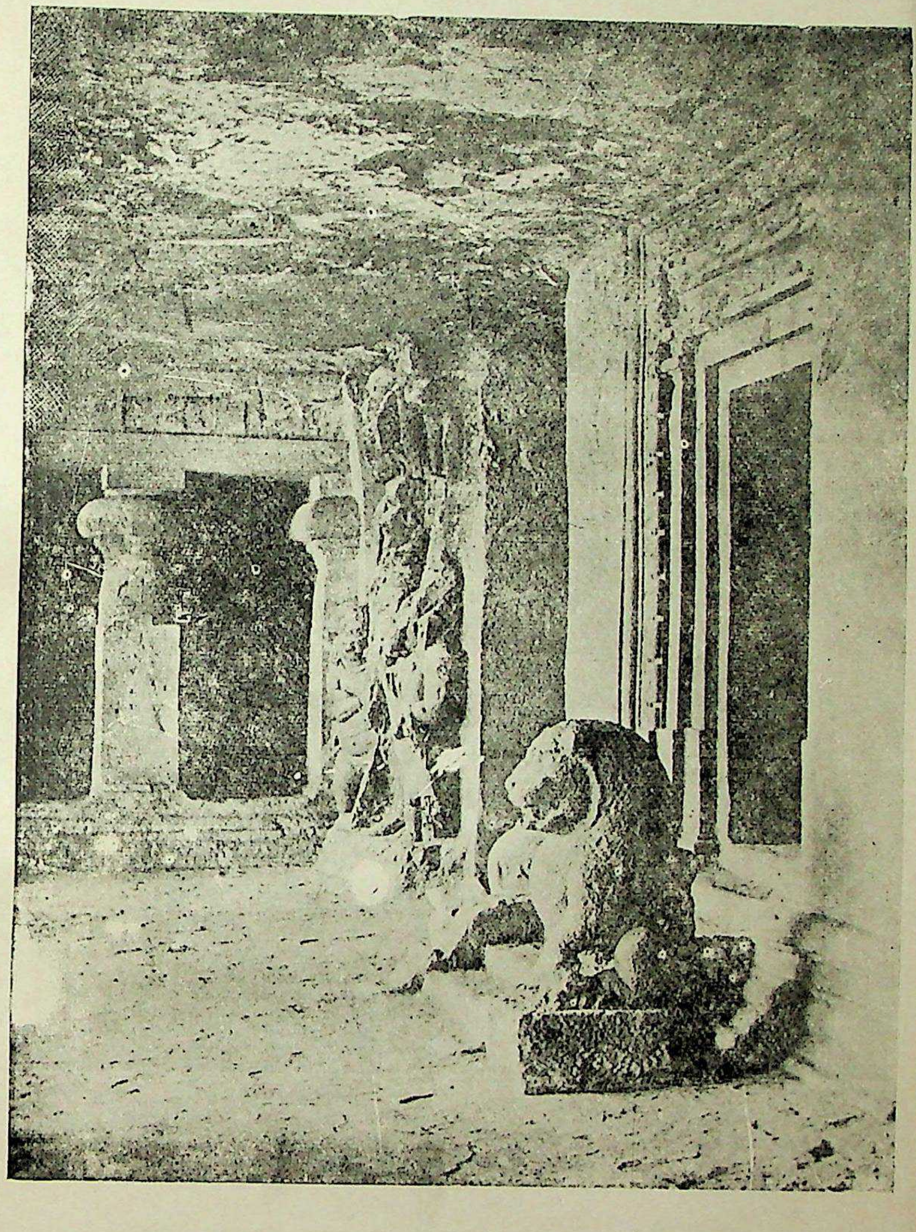

पूर्वी खण्ड के शिव-मन्दिर का पूर्वी खण्ड

फलक-सं० ३२ (पृ० रा० १७

प्रथम लयज के पूर्वी खण्ड में लेखक, उनके कनिष्ठ पुत्र अमरकान्त और श्री नर्मदेश्वर सिन्हा
फलक सं० ३३ (पृ० सं० १६)

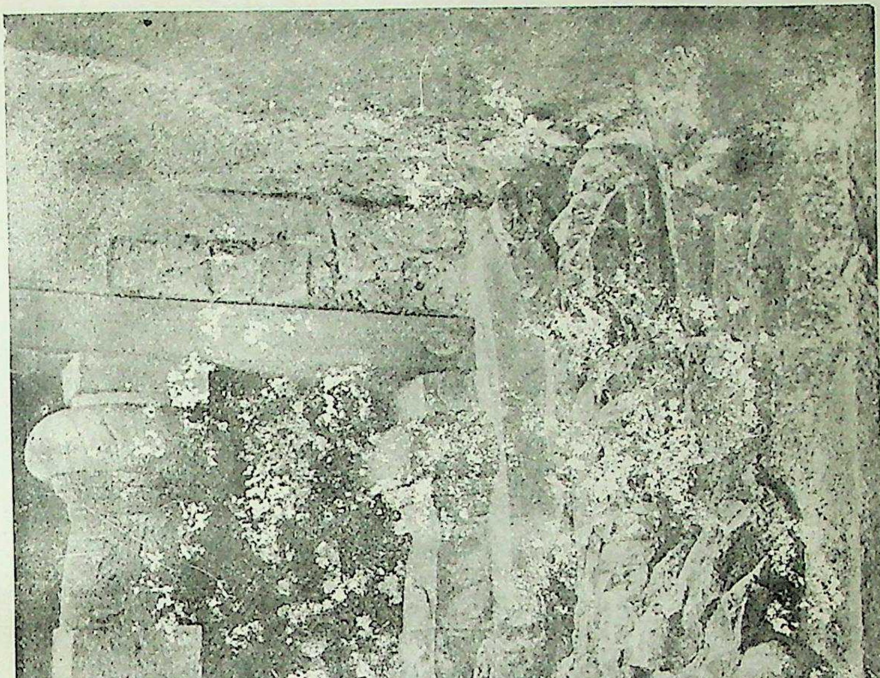

गुफा के भीतरी बरामदे का एक दृश्य
दाईं ओर कुब्जक-सहित मूर्त्ति
फलक-सं० ३२ का शेषांश (पृ० सं० १७)

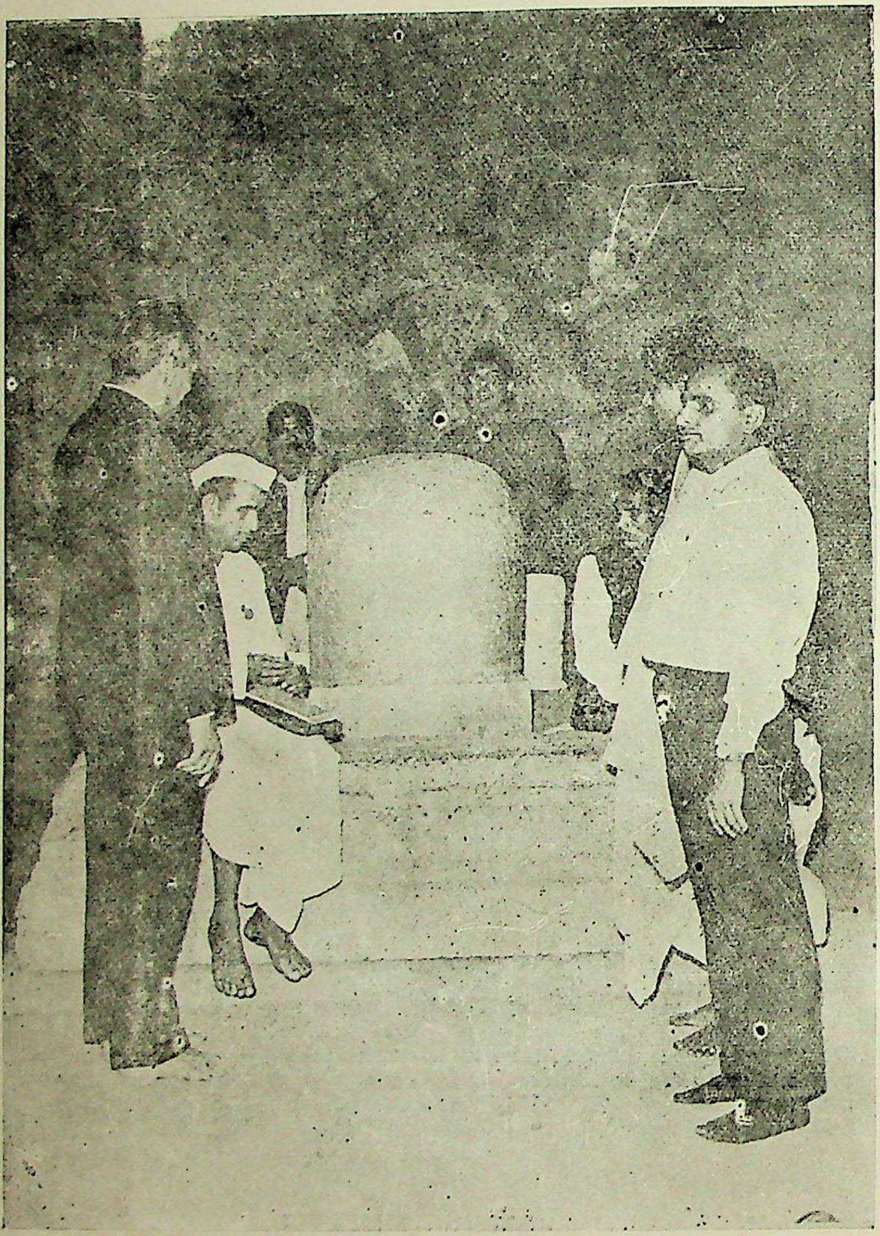

गर्भगृह के भीतर ९ फुट ५ इंच के वर्गाकार चबूतरे पर प्रतिष्ठित २ फुट ५ इंच व्यासवाले शिवलिंग के साथ लेखक और उनकी टोली के सदस्य

फलक सं० ३३ (पृ० स० १७)

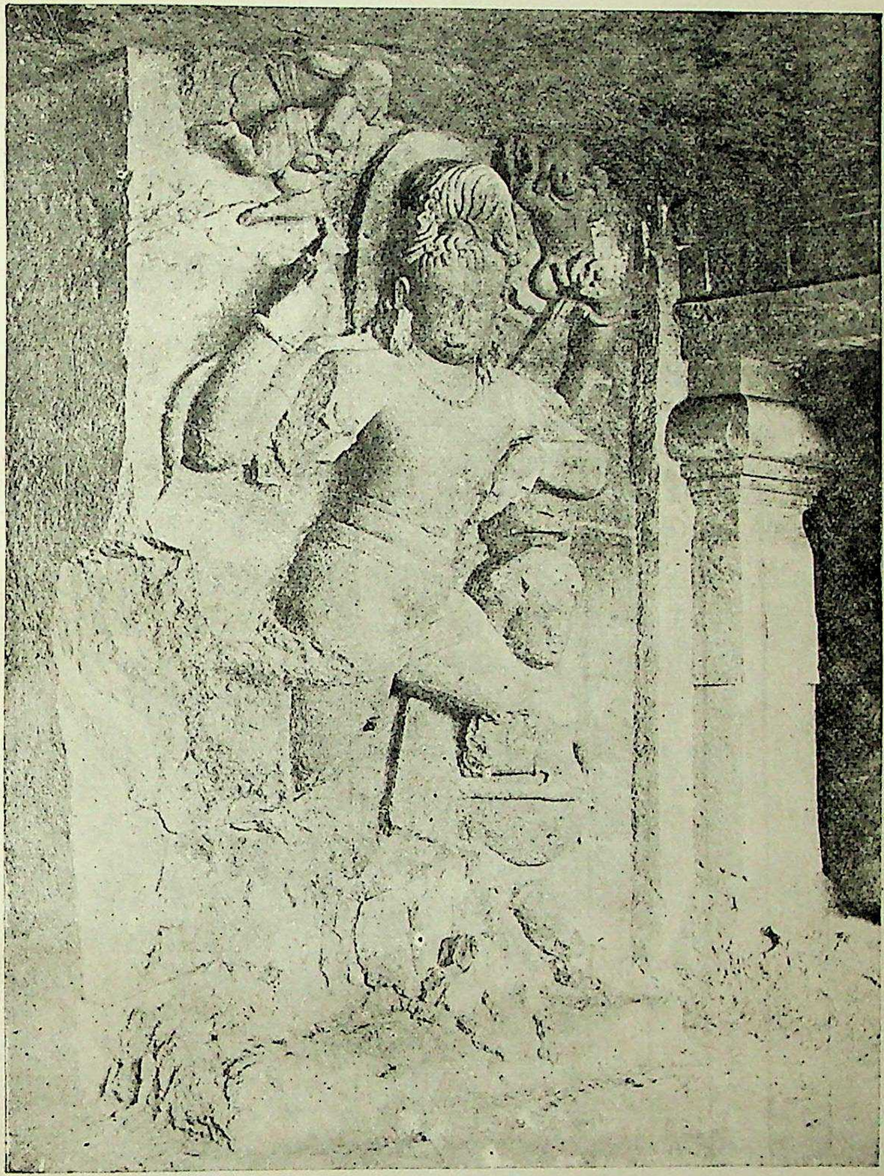

पूर्वी खण्ड के शिव-मन्दिर का पश्चिमी द्वारपाल
फलक-सं० ३४ (पृ० सं० १७)

पूर्वी खण्ड के शिव-मन्दिर का पश्चिमी द्वारपाल

फलक सं० ३४ (पृ० सं० १७)

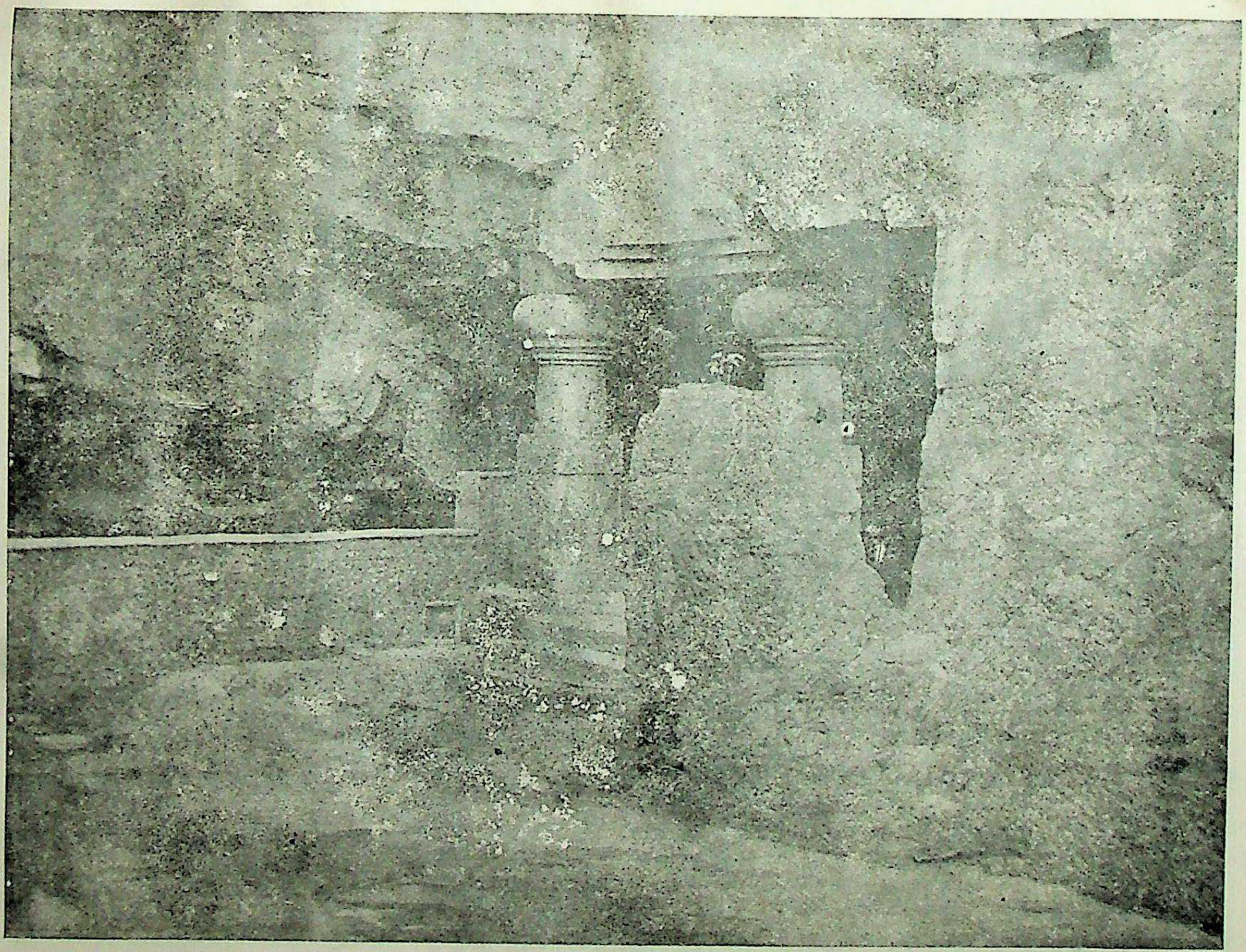

प्रथम लयण का पश्चिमी खण्ड—आँगन, कुण्ड और शिव-मन्दिर

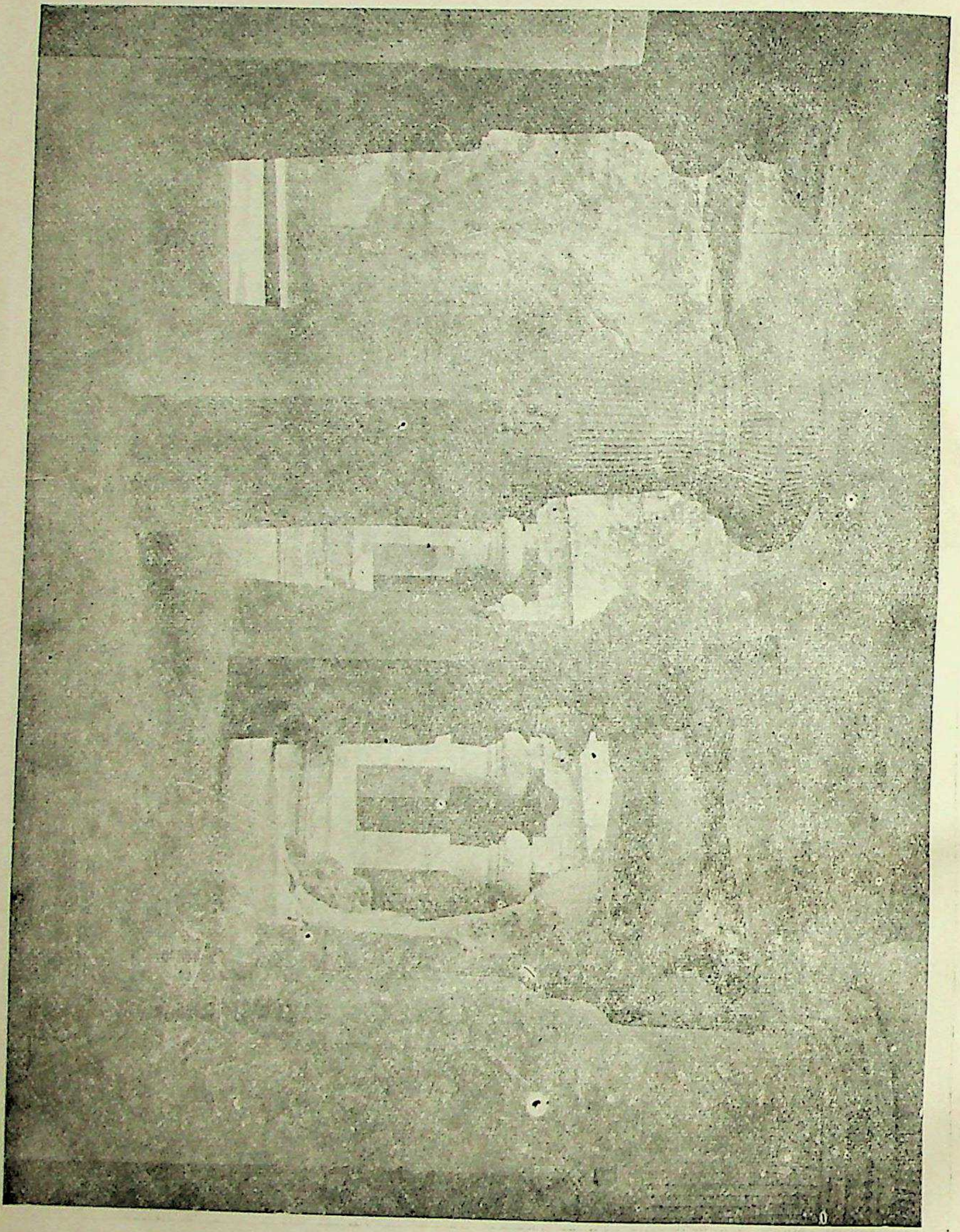

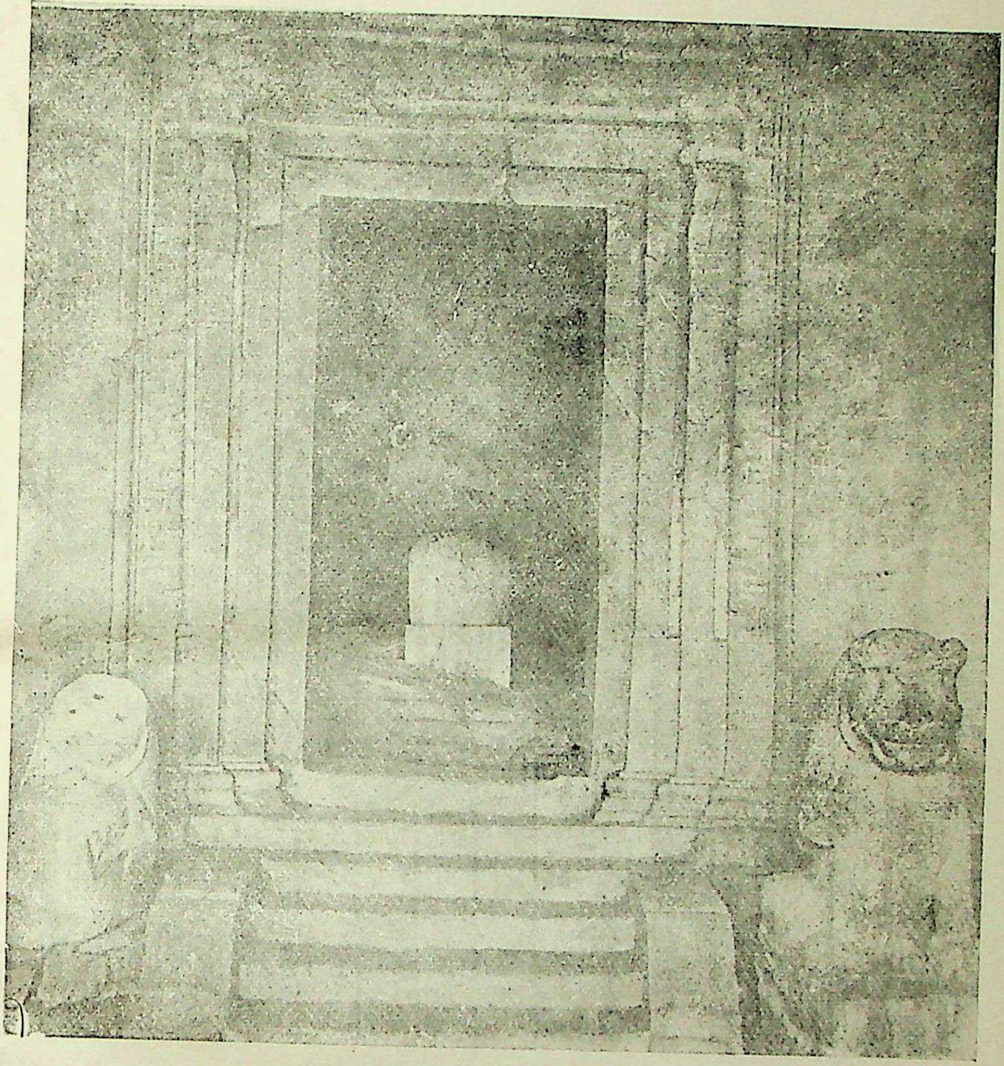

पश्चिमी खण्ड के शिव-मन्दिर में प्रतिष्ठित शिवलिङ्ग की एक झाँकी

फलक-सं० ३७ (पृ० सं० १९)

योगेश्वर शिव
बरसाती का पूर्वी पटल
फलक सं० २७, २८ (पृ० सं० १३)

परिषद् के अभिनव गौरव-ग्रन्थ

१.	साहित्य का मूल्यांकन : प्रो० सिद्धेश्वर प्रसाद	१८.००
२.	बिहार की कृषि और सामाजिक व्यवस्था : डॉ० चन्द्रिका ठाकुर	१४.००
३.	वाराणसी-वैभव : पं० कुबेरनाथ सुकुल	३५.००
४.	भोजपुरी-संस्कार-गीत : सं० पं० हंसकुमार तिवारी : श्रीराधावल्लभ शर्मा	३०.००
५.	भाषाविज्ञान की भारतीय परम्परा और पाणिनि : डॉ० रामदेव त्रिपाठी	३१.००
६	प्राचीन भारतीय मूर्त्ति-विज्ञान : डॉ० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी	३२.००
७.	हिन्दी-साहित्य और बिहार (खण्ड ३) : सं० पं० हंसकुमार तिवारी : डॉ० बजरंग वर्मा	४२.००
८.	तन्त्र तथा आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन : ले० म० म० पं० गोपीनाथ कविराज : अनु० : पं० हंसकुमार तिवारी	१३ ५०
९.	तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त : लेखक-अनुवादक : उपरिवत्	२३.००
१०.	तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि (द्वि० सं०) : म० म० पं० गोपीनाथ कविराज	१६.००
११.	भारतीय भाषाशास्त्रीय चिन्तन की पीठिका : डॉ० विद्यानिवास मिश्र	१०.००
१२.	विद्यापति-पदावली (तृतीय खण्ड) : विद्यापति-विभाग द्वारा प्रस्तुत	१८.५०
१३.	रहीम-साहित्य की भूमिका : डॉ० बमबम सिंह 'नीलकमल'	३८.७५
१४.	काव्य में अभिव्यंजनावाद : डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु	१२.५०
१५.	जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त : उपरिवत्	१३.५०
१६.	नाटक और रंगमंच : डॉ० सीताराम झा 'श्याम'	३५.००
१७.	मुद्रण-कला (द्वि० सं०) : पं० छविनाथ पाण्डेय	२५.००
१८.	उर्दू-कविता पर एक दृष्टि : मूल : श्रीकलीमुद्दीन अहमद : अनु० श्रीरामप्रसाद लाल	२०.००
१९.	पहेली-कोश : सं० पं० विक्रमादित्य मिश्र	२०.००

परिषद् के आगामी प्रकाशन (यन्त्रस्थ)

१. भोजपुरी-भाषा और साहित्य (द्वि० सं०) : डॉ० उदयनारायण तिवारी
२. चित्रकाव्य : सैद्धान्तिक विवेचन एवं ऐतिहासिक विकास : डॉ० रामदीन मिश्र
३. लीलारसतरंगिणी : सं० डॉ० परमानन्द पाण्डेय
४. भारतीय नाट्य-सिद्धान्त : उद्भव और विकास : डॉ० रामजी पाण्डेय
५. मैथिली-संस्कार-गीत : सं० श्रीराधावल्लभ शर्मा
६. कीर्त्तिलता : सं० डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव
७. आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्गविलास प्रेस की भूमिका : डॉ० धीरेन्द्रनाथ सिंह

प्राप्तिस्थान

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग

पटना-८००००४